।। ॐ ।।

।। श्री गणराज समर्थ ।।

श्रीमद् महाहंस
गाणपताचार्य गाणेशजगद्गुरु

श्री गणेशयोगींद्राचार्य महाराज

जीवन–चरित (हिंदी)

– संपादक तथा प्रकाशक –
श्रीगा. बालविनायक स. लालसरे
श्रीगाणेशजगद्गुरुपीठ श्रीयोगींद्रमठ
मोरगाँव, (जि. पुणे) – ४१२३०४
दूरभाष – (०२११२) २७९७४३
भ्रमणध्वनि – ९८५०९३१४७९

हिंदी अनुवाद – प्रा. सौ. शैलजा मांडके, पुणे

(सर्वाधिकार गुरुपीठ के अधीन)

– संपादक तथा प्रकाशक –
श्रीगा. बालविनायक महाराज लालसरे
मोरगाँव, जि. पुणे

❋

हिंदी अनुवाद
प्रा. सौ. शैलजा मांडके, पुणे

❋

हिंदी मुद्रण (प्रथम संस्करण)
श्रावण शुक्ला पंचमी – श्रीयोगींद्र जयंती,
११ अगस्त, २०१३

❋

सेवामूल्य : रुपये १००/–

❋

(सर्वाधिकार गुरुपीठ के अधीन)

।। ॐ ।।

।। श्री गणराज समर्थ ।।

प्राक्कथन

कृते तु गणकः प्रोक्तः
त्रेतायां मुद्गलो मुनिः ।।
द्वापारे भृगुव्यासश्च,
कलौ शङ्कर उच्यते ।।

प्रत्येक युग में जनहितैषी महात्मा अवतार धारण करते रहते हैं और जगदुद्धार का कार्य करते रहते हैं ।

साधकों को भगवान श्रीगणेश का ज्ञान प्राप्त कराते हुए उनका उद्धार कराने हेतु चारों युगों में प्रधान पंचगुरु के रूप में क्रमशः गणकाचार्य, मुद्गलमुनि, भृगु, महर्षि व्यास तथा भगवान शंकर युगाचार्य निश्चित हुए हैं । उन्होंने समय-समय पर भूस्वानंद क्षेत्र में श्रीब्रह्मभूयमहासिद्धिपीठ की स्थापना करके गुरुपीठद्वारा श्रीगणेशभक्ति का प्रचार-प्रसार करते हुए करोड़ों भक्तों को गणेशोपासना प्रदान की तथा अपने कार्य से भगवान श्रीगणेश को संतुष्ट किया ।

इन युगाचार्यों में से श्रीमुद्गल मुनि के कलियुगांतर्गत पूर्णावतार श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य महाराज ने लगभग साढ़े चारसौ वर्ष पूर्व अवतार धारण किया । उनका अधिकार इतना असाधारण था कि उनका साहचर्य प्राप्त कर उनकी प्रत्यक्ष सेवा का लाभ

उठाने हेतु साक्षात पंचदेवता मानवरूप धारण कर उनके शिष्य बने थे ।

अपनी निस्सीम सेवा से श्रीगजानन को प्रसन्न कराने तथा श्री मोरया के आदेश से अनेक अभंगों, श्रीमद्‌गणेश विजय, श्रीयोगेश्वरी आदि ग्रंथोंकी रचना द्‌वारा अमूल्य साहित्य सेवा करने वाले श्रीमद्‌गणेश योगींद्र महाराज के मराठी में लिखित जीवन-चरित का प्रकाशन लगभग दस वर्ष पूर्व ही श्रीयोगींद्र मठद्‌वारा किया गया है । किंतु महाराष्ट्र के बाहर रहने वाले अनगिनत भक्तों ने इस जीवनचरित को हिंदी में प्रकाशित होने की इच्छा प्रदर्शित की अत: श्रीयोगींद्रमहाराज के आदेश से ही हिंदी संस्करण का प्रकाशन किया जा रहा है ।

इस कार्य के बहाने हमारे गणेशभक्त श्री. एम. डी. शर्मा जी ने श्रीयोगींद्र सेवा का अनमोल अवसर प्राप्त किया है । इसी प्रकार मूलतया मराठी में लिखे प्रस्तुत जीवन चरित का उत्कृष्ट हिंदी अनुवाद करते हुए पुणे की प्रा. सौ. शैलजा मांडके जी ने भी श्रीयोगींद्र मठ के कार्य में बहुमूल्य योगदान प्रदान किया है ।

श्री सद्‌गुरु के चरणकमलों में यही प्रार्थना है कि उपर्युक्त सभी के साथ श्री योगींद्रमठ के सभी शिष्यों एवं सभी श्रीगणेशभक्तों को प्रस्तुत जीवन चरित पठन से प्रेरणा प्राप्त होकर उन्हें श्रीगणेशसेवा का अवसर मिले तथा श्रीगणेशकृपा की प्राप्ति हो जाए ।

श्रीगणेश सद्‌गुरु कृपाकांक्षी

– बालविनायक

।। श्री गणराज समर्थ ।।

श्रीमद्‌योगीन्द्र अवतार जन्मपूर्व निमित्तकारण वृत्त कथन

श्री गणेशाय नमः । श्री महासिद्धि महाबुद्धि समेताय
श्रीमत्स्वानंदेशाय ब्रह्मणस्पतये नमः ।
श्रीमद्‌गिरिजासुत योगीन्द्राचार्य वर्याय नमः
श्रीमद् गणेश योगीन्द्राचार्य वर्याय नमः
श्रीमद् अंकुशधारी सद्‌गुरवे योगीन्द्राय नमः
श्रीमद् हेरंबराज सद्‌गुरवे योगीन्द्राय नमः
श्रीमन् नग्नभैरव राजाय नमः

संपूर्ण विश्व तथा नानाविध ब्रह्म मानों प्रभु श्री गणराज के उदरसे निर्माण हुए हैं और उन्हीं के प्रभुत्व बल से अपने-अपने कार्य करते हुए अंततोगत्वा उन्हीं के उदर में विलीन होते हैं इस प्रकार जिनके उदर की स्थिति (लंब अर्थात सर्व समावेशक विशाल) है ऐसे प्रभु श्री गणराज का वर्णन 'लंबोदर' अभिधान से किया है । सगुण-निर्गुणातीत स्वसंवेद्‌य माया के विलास का याने विश्वब्रह्मादि की उत्पत्ति, उनकी क्रीडाएँ तथा उनकी समाप्ति इन सभी बातों का समावेशक जो स्वानंदमायारूप अवकाश उसी को स्वानंदेश का उदर मान लेना है और ऐसे तत्त्व से युक्त प्रभु श्रीगणराज को लंबोदर कहना है । उक्त लंबोदर परमात्मा सदैव, संपूर्णतया अजरूप में प्रशंसित है । वह कभी किसी के उदर से जन्म नहीं लेता । यह सर्वात्मता चिरंतन रूप में निश्चित है ।

कलियुग संपूर्णतया तमोगुण स्वरूप होने के कारण अधर्म प्रकाशन में कारणभूत साबित हुआ है । कलियुग का स्वभाव ही है कि वह धर्मप्रवण जनों में विविध प्रकार के मोहाभासों की सहायता से अधर्म प्रवृत्ति निर्माण करता है । उसके इस स्वभाव का पोषण करने वाले जन जो पूर्ववर्ती युग में वेद द्रोह करते थे – कलियुग में अवतीर्ण होकर धर्मविरोधी मतों का प्रचार – प्रसार करते हैं । उनका स्वरुप बाह्यत: धर्म का दिखावा, किंतु आचरण अधार्मिक प्रवृत्ति का इस प्रकार का होता है । कलियुग की सहायता करने कलियुग में जो महानुभाव उदित हुए उनमें से एक है मदनसखा वसंत जिसके द्वारा प्रचलित पाखंडमत का प्रभाव श्रीयोगींद्र महाराज के अवतार हेतु सहायक सिद्ध हुआ । उसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है–बहुत पहले तारकासुर नामक दैत्य ने कठोर तपश्चर्या से सामर्थ्य प्राप्त कर तीनों लोकों को पादाक्रांत किया । देवताओं को हराकर उनके पद हासिल किए और उन्हें जंगलों में खदेड़ दिया । ब्रह्माजी से ज्ञात हुआ कि भगवान शिवजी के वीर्य से उत्पन्न पुरुष की इस दैत्य का विनाश करेगा । श्रीशिवजी की अर्द्धांगिनी देवी पार्वती के हाथों में ही कार्यसिद्धि रहने के कारण कैलाश लोक में जाकर उनकी स्तुति करते हुए सहायता हेतु प्रार्थना की गई । वे प्रकट हुईं और संपूर्ण सहायता करने का वरदान उन्होंने दे दिया । उसके अनुसार सुंदर भीलनी का रूप धारण कर वे वहाँ आईं जहाँ भगवान श्रीशिवजी समस्त देवताओं समेत तपस्या कर रहे थे । भगवान श्रीशंकर ध्यानचिंतन में मग्न थे । देवी पार्वती ने कहा, ''श्रीशिवजी के ध्यानावस्था से बाहर आने से पूर्व कुछ भी करना संभव नहीं है । अत: श्रीशंकर का ध्यानभंग करने हेतु अखिल विश्व को मोहित करने वाले कामदेव को आमंत्रित

करो ।'' देवी पार्वती के कथनानुसार इंद्रादि देवताओं ने कामदेव की प्रार्थना की और सहायता की माँग की । देवताओं की प्रार्थना के अनुसार कामदेव ने अपने सखा वसंत के सहयोग से सहायता करने की तत्परता प्रदर्शित की । कामदेव से आश्वासन प्राप्त होने पर संतुष्ट देवताओं ने वसंत की प्रार्थना की और उससे भी आश्वासन प्राप्त किया । तदनंतर कामदेव तथा वसंत परस्पर - सहायता से भगवान श्रीशिव का ध्यानभंग करने हेतु चल पड़े । हिमालय की गुफा में आत्यंतिक एकांत स्थान पर भगवान श्रीशंकर का तपश्चरण चल रहा था । वहाँ पहुँचकर दोनों ने ध्यानभंग करने का कार्य आरंभ किया । श्रीशिवजी के ध्यानमग्न स्थिति में रहते कामदेव के प्रभाव से मादक सुगंध उनकी घ्राणेंद्रिय से प्रविष्ट हुई जिससे वे ध्यानावस्था से बाहर आए । ध्यानभंग होने से वे अत्यंत क्रुद्ध हुए और तृतीय नेत्र खोलकर उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया । कामदहन के पश्चात कामपत्नी रति का विलाप सुन कामसखा वसंत और उसके सहायक मोह, दंभ, मद, क्रोध, लोभ आदि ने मिलकर उससे पूछा कि उसके संतोष के लिए उन्हें क्या करना चाहिए । तब रति ने कहा, ''ऐसे प्रयास किए जाएँ जिससे कि शिव की दुष्कीर्ति हो तथा उन्हें सदैव, सर्वत्र अपूजनीय मानने की बुद्धि रूढ हो जाए ।'' उसका कथन सभी को दुष्कर प्रतीत हुआ फिर भी प्रति शोध लेने के लिए उन्होंने श्रीब्रह्माजी की आराधना आरंभ की । आराधन से ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और वरदान हेतु पधारे। तब सभी ने उनसे कहा, ''हे भगवन, मदन-दहन से दुखी रति के संतोष और मित्र-ऋण से उऋण होने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं । आप हमारी इस इच्छा की पूर्ति कीजिए कि हम सर्वत्र सदैव शिवनिंदक बन जाएँ जिससे कि हमारे स्वकीयों से शिव

को कभी किसी भी प्रकार के आदर या सम्मान की प्राप्ति नहीं होगी ।'' ब्रह्माजी ने 'तथास्तु' कहा किंतु आगे यह भी कहा, ''आपकी प्रार्थना की सिद्धि तुरंत नहीं होगी बल्कि लंबी अवधि के बाद होगी ।'' आगे उन्होंने कहा, ''जो भी कोई आपके अधीन होकर आपके उपदेशों का आदर करेंगे, वे शिवोपासना, आराधना और शिवपूजन नहीं करेंगे ।'' इतना कहकर ब्रह्माजी चले गए । ब्रह्माजी का कथन सुनकर सभी चिंतित हुए । इतने में युगपुरुष कलि ने वहाँ आकर सबको सांत्वना दी और कहा, ''मेरे समय के आगमन तक आप शांत रहें ।''

कलियुग संपूर्णतया प्रवाहित होकर सर्वत्र वेदविरोधी धर्माचार बढ़ गए । कर्नाटक प्रदेश में मदनपुत्र ने मधु नाम से जन्म लिया । आचार्य पद्यपाद के निकट द्विजपुत्र के रूप में रहते हुए उसने समग्र विद्याओं का अध्ययन किया । वह महान विद्वान बन गया । किंतु आनुवंशिक दोषात्मकता गुप्त आचरण से प्रतीत हो रही थी । एक बार वह गुरु के ध्यान में आ गई । तब उन्होंने उसे अभिशाप दिया कि संपादित विद्या का यत्किंचित् भी स्फुरण उसमें नहीं होगा । वह संपूर्णतया निष्फल हो जाएगी । मधु ने क्षमायाचना करते हुए शाप के अवशमन की याचना की । तब शाप निवृत्ति का आशीर्वाद देते हुए गुरु ने कहा, ''तुम्हारे अनुयायी शिष्य कलिकाल के सहायक संस्कारों से संपन्न ही होंगे । वे असहिष्णु, कामक्रोधादि विकारों से ग्रस्त, हेतुवाद का आश्रय करते हुए वेदादि धर्मों की निंदा करेंगे । अंततोगत्वा दुर्गति को ही प्राप्त होंगे।'' इतना कहते हुए वे स्वस्थान लौट गए । मधुनामक वह द्विजपुत्र अपेक्षित कार्यसिद्धि हेतु कार्यरत हुआ । कलियुग का अनुसरण करने वाली जनता मोहादि की आंतरिक काईवाई के फलस्वरूप उसी

के अनुकूल सिद्ध हुई । इस प्रकार वह मत दक्षिणी भारत में सर्वत्र फैलने लगा । इस पंथ के अनुयायी वैष्णवजन सदैव शिवद्वेषी रहे थे । रामानुज अभिधान द्वारा विशिष्टाद्वैत नाम से अपने मत का प्रसार सर्वत्र किया गया । दोनों विष्णु-उपासक एवं तंत्रमार्ग के आचरणकर्ता ! कलिकाल की महिमा के अनुसार प्रभूत मात्रा में अनुयायी प्राप्त होने से उस मार्ग का प्रसार तेजी से हुआ । अद्वैत सिद्धांत के समर्थक विद्वान, श्रेष्ठ आचार्यों ने समय-समय पर बार-बार उनके मतों का खंडन किया । किंतु कलिकाल की सहायता के फलस्वरूप उनकी वृद्धि ही होती रही । विद्यारण प्रभृति आचार्यों ने समय-समय पर उनका खंडन किया । इस तरह दक्षिणी भारत में वैष्णव-मत का प्रभाव पूर्णरूपेण हुआ है इसे देख जगद्गुरुपीठ के रूप में ख्यातिप्राप्त शृंगेरी के शंकराचार्य पीठस्थान को अपने अधीन करा लेने का विचार उन माध्वमतानुयायियों ने किया । उस समय के पीठारूढ शंकराचार्य अत्यंत वृद्ध थे । निष्ठावान अनुयायी भी अधिक मात्रा में नहीं थे । परिणामत: वादविवाद करना उनके लिए संभव नहीं था । किंतु इस पीडा से वे बड़े व्यथित हुए थे।

ईश्वरीय सत्ता की महिमा फलस्वरूप समय की गतिविधि के अनुकूल महान अधिकारी विभूतियाँ धर्मसंस्थापना का कार्य करती रहती हैं । मौद्गल सिद्धांत का प्रकाशन श्रीमन्मुद्गल के पूर्णावतार, श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य महाराज के द्वारा होना निश्चित है । अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप में प्रवहमान संपूर्ण अद्वैत सिद्धांत संप्रदाय परंपरा पुन:उपलब्ध होने हेतु योगींद्रमठ का पुनरुद्धार अनिवार्य था । उसके लिए मुख्य पीठस्थान के रूप में शृंगेरी स्थित श्री शारदा मठस्थान एवं उसका गौरव संरक्षित तथा संवर्धित होना

आवश्यक था । गुजरात में सोरटी सोमनाथ नामक भगवान शिवजी का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है । उस क्षेत्र के निकट आंबी गाँव में सोमनाथ नामक ब्राह्मण रहता था । वह बड़ा ही धर्मनिष्ठ तथा शिवोपासक था । उसकी पत्नी उमा भी शिवभक्त थी । यथासमय इस दंपती के दो पुत्र हुए । वे दोनों अत्यंत सुलक्षण एवं मेधावी थे । ज्येष्ठ पुत्र का नाम था चिंतामणि तथा कनिष्ठ पुत्र का मोरेश्वर। यथासमय उपनयन संस्कार से वे द्विज बने । अल्पावधि में ही वे वेदविद्या-पारंगत हो महापंडित के रूप में प्रतिष्ठित हुए । तप:पूत विद्वत्ता के फलस्वरूप सबकी प्रशंसा के भाजन बने । एक बार सोमनाथ को एक स्वप्न आया । स्वप्न में उसे माता शारदा देवी के दर्शन हुए । उन्हें देख सोमनाथ चकचौंध गया । देवीमाँ ने कहा, ''मैं शृंगेरीपीठ की अधिष्ठानी देवी शारदाम्बा हूँ । मेरे ही कारण यह पीठ शारदापीठ कहलाता है । इस पीठ के लोकोद्धार का कार्य तुम्हारे पुत्र चिंतामणि के हाथों संपन्न होने वाला है । शारदापीठ पर आरूढ़ होते ही विभूतिमान सुरेश्वराचार्य की सत्ता उसमें पूर्णतया प्रकाशित होगी । पीठाधीश बनने पर चिंतामणि उन्मत्त पाखंडियों को वादविवाद में पराभूत करेगा और राजा को भी अपने अधीन करा लेगा । तुम्हारे पुत्र चिंतामणि का शृंगेरीपीठ पर अधिष्ठित होना आवश्यक है क्योंकि संप्रति वहाँ अधिष्ठित पीठाधिपति यतिश्रेष्ठ अत्याधिक वृद्ध बने हैं तथा पीठरक्षा में संपूर्णतया असमर्थ हैं।'' उसी क्षण सोमनाथ ने अपने पुत्र को माता शारदा देवी के हाथों सौंप दिया । उसे लेकर माता शारदा अंतर्हित हो गईं । इतने में उसकी आँख खुल गई । देखा तो कुछ भी नहीं । उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने यह घटना अपनी पत्नी और दोनों पुत्रों को सुनाई । उन्हें प्रतीत हुआ कि इस समूचे प्रसंग में ईश्वर का कोई

विशेष संकेत छिपा है । स्वप्नार्थ पर विचार करते हुए सोमनाथ शांत बैठा था । इतने में शृंगेरी मठ की ओर से ब्राह्मण मंडली उसके घर आई और उसने कहा, ''माँ, शारदादेवी के आदेश से शृंगेरी पीठासीन अधिकारी पीठाचार्य ने हमें भेजा है । उन्होंने कहा है कि आंबी गाँव में सोमनाथ नामक ब्राह्मण रहता है । उसके दो पुत्र हैं - मोरेश्वर तथा चिंतामणि दोनों महान अलौकिक अधिकारी है । अत: आप सभी हमारे साथ चलिए ।'' सोमनाथ को पराकाष्ठा का आश्चर्य हुआ । अतीव आनंद भी हुआ । अपने दोनों पुत्रों, भार्या तथा अन्य लोगों के साथ वह शृंगेरी मठ के लिए चल पड़ा । पीठारूढ़ नृसिंहाश्रम नामधारक शंकराचार्य को सोमनाथ तथा अन्य सभी ने प्रणाम किया । सोमनाथ तथा उसके दोनों पुत्रों को देख आचार्य को संतोष हुआ । उन्हें अपने निकट बिठाकर उन्होंने क्षेम-कुशल पूछा और कहा, ''आप मठ में सुखपूर्वक शांति से रहें । शीघ्र ही आपको सबकुछ ज्ञात होगा ।'' एक दिन सुयोग्य समय देख आचार्य ने सोमनाथ तथा उसकी भार्या और पुत्रों को अपने निकट बुलाया और कहा, ''शारदापीठ की स्थापना आद्य शंकराचार्य द्वारा हुई है तथा पीठाचार्य सुरेश्वर योगींद्रमहाराज उसकी रक्षा करते हैं । किंतु कलिकाल के बढ़ते प्रभाव से अद्वैत विरोधी पाखंडी मतप्रवाह प्रबल हुआ है । वृद्धावस्था के कारण मुझ में वाद-विवाद की सामर्थ्य शेष नहीं है । सुयोग्य अधिकारी व्यक्ति भी मेरे पास नहीं है । राजसत्ता का आधार भी लिया नहीं जा सकता । इसलिए पीठ की सुरक्षा को लेकर चिंतित हूँ । आँखों के सामने हो रही धर्म की अप्रतिष्ठा और दुर्गत देखी नहीं जाती । दुष्ट लोग मेरे अंत की ओर आँखें गड़ाए बैठे हैं । अत: इस पीठ की अधिष्ठात्री देवी माता शारदाम्बा ने स्वप्न में दर्शन देते हुए पीठ रक्षा हेतु आपके पुत्रों को

बुला लाने तथा ज्येष्ठ पुत्र चिंतामणि को पीठाधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित करने को कहा । उसके अनुसार हे द्विजश्रेष्ठ सोमनाथ, तुम्हारा ज्येष्ठ पुत्र मुझे सौंप दो ताकि उसके हाथों पीठाधिकार सुपुर्द कर मैं मुक्त हो जाऊंगा ।'' सोमनाथ ने कहा कि उसे भी माता शारदाम्बा ने इसी प्रकार का आदेश दिया है । सुयोग्य मुहूर्त पर चिंतामणि को संन्यास दीक्षा देकर उसे शारदापीठ पर प्रतिष्ठित किया । उसे महावाक्यादि उपदेश स्वयं किया और उसका आश्रम नामाभिधान चिंतामणि योगींद्राचार्य किया । पीठ के आद्य आचार्य सुरेश्वर महाराज जी ने चिंतामणि योगींद्र जी को दर्शन दिए । चिंतामणि योगींद्र जी ने उन्हें प्रणाम किया । सुरेश्वर महाराज जी ने उन्हें गणेश एकाक्षर महामंत्र का उपदेश दिया । समयदीक्षा समेत संपूर्ण गणेशज्ञान दीक्षा भी प्रदान की । इस तरह चिंतामणि योगींद्र महाराज जी संपूर्ण गणेश हैं । उन्हें प्रभु श्रीगणराज की कृपाप्राप्ति हुई । उनका प्रथम शिष्य मोरेश्वर शास्त्री भी अत्यंत विद्वान तथा गणेशभक्त था । चिंतामणि योगींद्र महाराज जी ने मोरेश्वर शास्त्री के साथ अद्वैत - सिद्धांत - संस्थापना हेतु यात्रा आरंभ की । दोनों के विद्वत्तेज के सम्मुख किसी की एक न चली । शालिवाहन वंशीय सत्ताधारी राजा को भी मोरेश्वरशास्त्री जी ने अपने अधीन कर लिया । राजसत्ता के समर्थन से द्वैतादि मार्गों का विनाश किया और विश्वविजय यात्रा संपादित की । देवी शारदामाता के आदेशानुसार शारदापीठ के पुनरुद्धार हेतु नियुक्त बंधुद्वय अर्थात श्री चिंतामण्याचार्य तथा मोरेश्वरशास्त्री जी ने जो महत्तम कार्य अर्जित किया वह समग्र देवताओं को संतुष्ट कराने वाला सिद्ध हुआ । श्रीमदाद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित शारदापीठ अन्य सभी पीठों में श्रेष्ठ है तथा प्रधानतया गाणेशाद्वैत सिद्धांत प्रकाशन के लिए ही

प्रमाणित हुआ है । इसी लिए श्रीचिंतामणि योगींद्र महाराज जी की नियुक्ति वहाँ हुई । अद्‌वैत सिद्‌धांत का संपूर्ण प्रकाश चारों और फैल गया । तथा विपरीत मतवादियों का पूर्ण विध्वंस हुआ जिसे देख श्री चिंतामण्याचार्य कृतकार्य हो गए । संपूर्णतया निश्चिंत हो गए । मठ से संबद्‌ध कर्तव्य कर्मों की समाप्ति पर श्री मोरेश्वर शास्त्री भी सद्‌गुरू की आज्ञा से आंबी गाँव में आकर रहने लगे और यथोचित रूप में गृहस्थाश्रम का पालन करने लगे । एक दिन आद्‌य पीठाधीश श्रीसुरेंद्रपाद योगींद्र महाराज जी तथा पीठाधिष्ठात्री देवी शारदाम्बा माता दोनों साक्षात् प्रकट हुए और उन्होंने कहा, ''भारतवर्ष में सर्वत्र अद्‌वैत सिद्‌धांत का प्रकाशन तथा शारदापीठ की रक्षा का कार्य किया गया यह तो निश्चय ही बहुत बड़ी बात हुई । इससे हमें अत्यंत आनंद और संतोष हुआ है ।'' इतना कहकर दोनों अंतर्हित हो गए । श्री चिंतामणि योगींद्राचार्य महाराज अतीव संतोष से सुखपूर्वक शांत रहे । तदनंतर उन्होंने आत्मोन्नति के लिए अवश्यकर्म संपादित करने का उपक्रम आरंभ किया । श्रीमद् गणेश योगींद्र महाराज के अवतार ग्रहण से पूर्व उनके माता-पिता आदि की कुल स्थिति इस प्रकार की थी । श्री मोरेश्वर तथा सुशीला - उभय दंपती - प्रभु श्रीगणराज के नामस्मरण में तल्लीन हो संतोषपूर्वक जीवनयापन करने लगे ।

।। श्री गजाननार्पणमस्तु ।।

।। श्री गणराज समर्थ ।।

श्रीमद् भगवत्पाद योगींद्र महाराज जी ने धर्मस्वरूप अद्वैतसिद्धांत संस्थापना हेतु चारों दिशाओं में मठों का निर्माण किया । उनमें से दक्षिणी भारत का शृंगेरी मठस्थान प्रसिद्ध है । वहाँ गुजरात के आंबी ग्रामस्थित धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्री सोमनाथ के ज्येष्ठ पुत्र चिंतामणि की श्रीमद् चिंतामणियोगींद्र पीठाधीश आचार्य के रूप में योजना की गई थी और उसके सहायक के रूप में कनिष्ठ पुत्र श्री मोरेश्वर कार्य करते थे । सर्वत्र अद्वैत सिद्धांत की सुयोग्य संस्थापना हो चुकी है इसे देख श्रीमद्चिंतामणी योगींद्र जी के आदेश से मोरेश्वर शास्त्री अपनी भार्या समेत आंबी ग्राम आकर रहने लगे । मोरेश्वर शास्त्री जी की पत्नी का नाम सुशीला था । दोनों का गृहस्थाश्रम धर्मशास्त्र तथा धर्मानुकूल चल रहा था । मोरेश्वर शास्त्री जी की पत्नी भी धर्मपरायण एवं भक्तिमार्ग का अनुसरण करने वाली थी । वह साध्वी घर के सभी कार्य पति की आज्ञानुसार करती थी तथा नित्य पतिसेवा में निरत रहते हुए जीवनयापन करती थी । वेदपारंगत शास्त्री होने के कारण श्री मोरेश्वर जी के घर अध्ययन - अध्यापन का कार्य चलता था। अत: उनके यहाँ वेदाध्ययन करने, व्याकरण तथा ज्योतिष सीखने विद्यार्थी आते थे । उनके यहाँ शिक्षा प्राप्त कर कुछेक काव्यशास्त्र तथा नाट्यपारंगत एवं वैदय-शास्त्री बन गए । कोई वेदांत मार्तंड बन गए । इस प्रकार उनका घर सदैव भरापूरा एवं प्रसन्नता से भरा रहता था । उनके घर अतिथियों का आदर-सत्कार प्रेमपूर्वक होता

था । जिससे कि घर में नित्य ही सज्जनों – साधुसंतों का आगमन होता रहता था और अनेकों के आशीर्वाद का लाभ उन्हें होता था । नित्यकर्म के रूप में दोनों गणेश–पूजन, चिंतन करते थे । इस प्रकार दोनों का जीवन आनंद से परिपूर्ण होते हुए भी मन में थोड़ी सी उदासी छाई रहती थी क्यों कि विवाह के पश्चात काफी समय बीतने पर भी अभी तक पुत्र संतान की प्राप्ति नहीं हुई थी । पुत्रप्राप्ति के बिना स्त्रीत्व की पूर्णता नहीं होती इस विचार से देवी सुशीला खिन्न रहती थी । सात्त्विक एवं श्रद्धावान स्वभाव के कारण श्री मोरेश्वर शास्त्री जी की आस्तिक्य बुद्धि वर्णनातीत थी । इस दृढ़ विश्वास के साथ कि सभी बातें ईश्वराधीन हैं और मनुष्य उसके हाथ की कठपुतली मात्र है, वे संपूर्ण दायित्व भगवान पर सौंपकर भक्तियुक्त अंत:करण से श्रीगणेश की आराधना–उपासना करते थे । इसी तरह कुछ काल व्यतीत होने पर पुत्रप्राप्ति हेतु श्री मयुरेश्वर क्षेत्र जाकर श्रीगणेशाराधना करने का विचार उनके मन में उभरा । क्योंकि मयूरेशक्षेत्र शीघ्र फलप्रदायक क्षेत्र है । इसी प्रकार श्री स्वानंदेशाधिष्ठित श्रीमोरेश्वर क्षेत्र सर्वपुरुषार्थ अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष समेत ब्रह्मसायुज्य मोक्ष–सिद्धि प्रदान करनेवाला क्षेत्र है । इसी प्रकार का विचार उनकी भार्या देवी सुशीला के मन में भी उठा । अत: दोनों के द्वारा लिए गए इस निर्णय के अनुसार एक अच्छे मुहूर्त पर दोनों अपने प्रिय उपास्य देवता के नगर अर्थात भूस्वानंदक्षेत्र मोरेश्वर की ओर चल पड़े । भूस्वानंदक्षेत्र पहुँचने पर उन्होंने प्रभु श्रीगणराज के दर्शन किए । श्रीब्रह्मकमंडलु में स्नान किया । श्रीगणेशकुंड तीर्थ में स्नान कर पाप विमुक्त हुए । पंचतीर्थ एवं सर्वतीर्थ स्नान की एक विधि पुरी की । श्रीक्षेत्र पांडवेश्वर जाकर गणेशगया नामक विधि अर्थात श्राद्धकर्म पिंडदान विधि करने

के पश्चात क्षेत्रवास फल हेतु नित्ययात्रा विधि संपन्न की और श्रीक्षेत्र में नित्यनिवास करना निश्चित किया । क्षेत्रसेवन से सभी ऋणों से मुक्ति मिलती है । अत: ऋणपूर्ति एवं पूर्णशुद्धि के लिए उन्होंने क्षेत्रयात्राएँ अर्थात द्वारयात्राएँ भी पूर्ण कीं । इन सभी बातों की पूर्ति के अनंतर पुत्रप्राप्ति हेतु प्रभु श्रीगणराज की प्रार्थना करते हुए उन्होंने पंचदेव मयूरेश के उपासना-अनुष्ठान का आरंभ किया । प्रतिदिन प्रात:काल जल्दी उठकर श्री ब्रह्मकमंडलु में स्नान करना, स्नानोत्तर संध्यावंदन, तत्पश्चात नित्ययात्रा करते हुए प्रभु श्रीगणराज के पूजन के उपरांत पति-पत्नी दोनों मूर्ति के निकट बैठकर उष:काल, सुबह, दोपहर, सायं एवं रात्रि में एकाक्षर मंत्र का जाप करते थे । अन्य अनुष्ठान भी चल रहे थे; किंतु उनमें जपानुष्ठान मुख्य होता था । दोनों अतीव प्रसन्नता एवं आनंदपूर्वक सभी अनुष्ठानों को निभा रहे थे । सदैव प्रभु श्रीगणराज के अनुसंधान में निमग्न रहते थे । इस प्रकार उनका गणेश-आराधन निरंतर चल रहा था । प्रतिदिन की तरह श्री मोरेश्वर अपनी भार्या समेत मयूरेशपूजन के लिए मंदिर पधारे थे । दोनों ने श्रीमयूरेश का पूजन किया । पूजन के अनंतर मूर्ति के समीप बैठकर दोपहर तक दोनों प्रसन्नतापूर्वक एकाक्षर मंत्र का जाप कर रहे थे । जाप करते - करते सुशीला देवी के मन में विचार उभरा कि मेरे उपास्य श्रीमयूरेश मेरी पुत्रप्राप्ति की इच्छा कब पुरी करेंगे ? इसी विचार में वह प्रभु श्री गणनाथ की मूर्ति की ओर एकटक देखती रही । इतने में एक विस्मयकारक घटना घटित हुई । श्रीस्वानंदनाथ मयूरेश की मूर्ति के दक्षिण पार्श्वसे एक दीप्तिमान ज्योति प्रकट हुई । (वर्णन प्राप्त होता है कि ईश्वर के दर्शन सामान्यतया नाद तथा प्रकाश के माध्यम से साक्षात् होते हैं । अर्थात प्रकट हुई ज्योति और कोई न होकर स्वयं प्रभु

श्रीस्वानंदनाथ ही हैं ।) प्रकट हुई ज्योति मूर्ति के पार्श्व से ऊपर चली गई और वहाँ से देवी सुशीला के मुख में प्रवेश कर उसके उदर में स्थिर हो गई । इस घटना से दोनों आनंदपूरित हो गए । मानों उन्हें आनंद के निधान की ही प्राप्ति हुई हो । दोनों मन - ही - मन जान गए कि तेज की यह अनुभूति तपश्चरण की सफलता का शुभ संकेत ही है । खुशी से भरकर उन्होंने जयजयकार की । साष्टांग प्रणाम कर वे निवासस्थान लौटे । जिस दिन यह अलौकिक घटना घटित हुई उसी दिन प्रभु श्रीगणराज ने दोनों को साक्षात दर्शन दिए । सिंदूर धारी, रक्तचंदन चर्चित, मूषकवाहन सहित, चतुर्भुज, उदर पर वलयित शेष, सुंदर वस्त्र परिधान किया हुआ, पाशांकुशधर तथा मोदकधारी, विविध आभूषणों से सजा, सिद्धि-बुद्धि समेत इस प्रकार श्रीगणराज प्रभु के साक्षात दर्शन दोनों को हुए । दर्शनांत में श्री गणराज प्रभु ने मधुर वाणी में उनसे कहा, ''हे मोरेश्वर, हे सुशीला, आपके तपाचरण से हमें प्रसन्नता हुई है । हम संतुष्ट हुए हैं । इसी लिए आपकी इच्छाएँ फलप्रद होने वाली हैं । कलिकाल के प्रभाव से इन दिनों गाणेशधर्म लुप्त हुआ है । वैदिक संप्रदाय लुप्त हुआ है । सर्वत्र अंधकार छाया हुआ है । अत: सिवाय मुद्गल के मेरे ज्ञानस्वरूप का प्रकटीकरण अन्य कोई भी नहीं कर सकेगा । मयूरेशक्षेत्र में विद्यमान ब्रह्मभूयसिद्धिपीठ का उद्धार करने के लिए गणेश धर्म संस्थापना हेतु यदि आपका होने वाला पुत्र संन्यास ग्रहण करेगा तो हमारी वंशवृद्धि तथा कुलोन्नति का क्या होगा इस प्रकार का प्रश्न यदि आपके मन में निर्माण होता है तो भी चिंता न करें । हमारी कृपा से आपके और एक पुत्र होगा और वह अवश्य आपकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करेगा । आप दोनों स्वस्थचित्त रहें ।'' समूचे

पूजन का स्वीकार करते हुए कृपाप्रसाद के रूप में श्री प्रभु ने अपना हाथ उनके मस्तक पर रखा और वे अंतर्हित हो गए । दोनों हड़बड़ाकर जग गए । दोनों ने स्वप्न में घटित बातों को एक दुसरे से कहा । एक ही समय दोनों को प्राप्त इस अनुभव से प्रभु श्री गणनाथ के प्रति उनका प्रेम और अधिक वृद्धिंगत होने लगा । प्रतिदिन की तरह गणेशाराधन आरंभ हुआ । उसमें प्रसन्नता एवं कृतज्ञता का भाव था । इस घटना के पश्चात दोनों एक महीने तक क्षेत्र में रहे । भगवान श्री मयूरेश की प्रेमपूर्वक सेवा करना, मंदिर में श्रीगणेशग्रंथों का वाचन करना, गणेशपुराण की श्रीगणेशलीलाओं का वर्णन करना इस प्रकार का नित्य आचरण उन्होंने कायम रखा । श्री मोरेश्वर एवं सुशीला को उनका मयूरेश-क्षेत्र-निवास पीहर-निवास की तरह प्रतीत हुआ । श्रीगणराज प्रभु ने उन्हें आंबी ग्राम लौटने का आदेश दिया । आदेशानुसार एक दिन अच्छे मुहूर्त पर प्रभु श्रीगणराज का पूजन करते हुए दोनों ने प्रार्थनापूर्वक विदा होने की अनुमति माँगी और कहा, ''हे पंचजनक भक्तवत्सल हेरंब महाराज, आपकी कृपा से हमारी मनोकामनाएँ पूरी हुईं । हमारी समूची चित्तवृत्तियाँ शांत हो गईं । किसी भी प्रकार की लौकिक वासनाएँ शेष नहीं रहीं । आपही की कृपा से ब्रह्मभाव सिद्धि भी प्राप्त हुई ।'' श्री मोरेश्वर और उनकी पत्नी सुशीला की प्रार्थना से श्रीगणराज प्रभु संतुष्ट हुए और प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने अपने मस्तक पर अर्पित दूर्वाएँ उन्हें प्रसादी के रूप में प्रदान कीं तथा आंबी ग्राम लौटने की अनुमति दी । भारी अंत:करण से उन्होंने क्षेत्र तथा श्री प्रभु से विदा ली । क्षेत्रवास त्यागना उनके लिए कठिन प्रतीत हो रहा था । पाँव उठाना मुश्किल हो रहा था । बड़े उदास हृदय से दोनों ने मयूरेश्वर के नगरद्वार को पार किया । पुन: मंदिर

के शिखर की ओर देखा, प्रणाम किया और चल पड़े । मार्गक्रमण करते हुए आंबी ग्राम पहुँचे । आंबी ग्रामवासियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया । श्री मोरेश्वर शास्त्री सभी ग्रामवासियों के लिए वंदनीय थे ही; किंतु अब श्रीगणराज कृपा की महिमा ज्ञात होने पर उनके प्रति आदर दुगुना हो गया । आंबी ग्राम स्थित सोमनाथ ब्राह्मण के दोनों पुत्र अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार सुयोग्य अधिकारी बन गए इस बात पर ग्रामवासियों में गौरवपूर्ण प्रसन्नता के भाव थे । स्वस्थान लौटने पर पतिपत्नी दोनों का समय श्रीगणेश भजन, अनुसंधान, जप, ध्यान आदि में ही व्यतीत हो रहा था और वे इच्छित वरदानपूर्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे । समुंदर में अनगिनत सीपियाँ होती हैं किंतु उनमें से जो भीतर से अत्यंत तेजस्वी होती हैं, उन्हीं में श्रेष्ठ मोती पाए जाते हैं । इसी तरह यह निर्विवाद सत्य है कि अत्यंत पवित्र एवं पुण्यमय कुल में ही महान विभूतियाँ जन्म लेती हैं ।

भक्तप्रिय भगवान नित्य ही अपने भक्तों की इच्छापूर्ति हेतू सदैव बद्धपरिकर होते हैं । ऐसे भक्ताभिमानी श्रीगणराज प्रभु ने भी श्रद्धालु दंपती के मनोभिलषित की पूर्ति में अधिक विलंब नहीं किया । श्रीमोरेश्वर की भार्या देवी सुशीला ने वरदान पूर्ति की आहट पाई । वे गर्भवती हुईं । उनके गर्भ में दिव्य तेज उदित हुआ । उभय दंपती को तो स्वानंद लोक ही धरती पर उतरा हुआ प्रतीत हुआ । सुशीला देवी की तनद्युति अलौकिक चमकसे दमकने लगी । सुशीला देवी के दोहद भी सदा की तरह साधारण नहीं थे । एक दृष्टि से वे असाधारण ही थे । उनका मुखकमल तेजोमय दिखाई देने लगा । उसपर गांभीर्य की आभा खिलने लगी । अपना संपूर्ण समय वे गणेश भजन तथा ध्यान में व्यतीत करने लगीं ।

सर्वांग में सिंदूर विलेपन करना, तिलक धारण करना, गेरुए वस्त्र परिधान करना इस प्रकार का उनका आचरण था । श्रीगणेश - लीला - कथन में तल्लीन होने की अभिलाषा वृद्धिंगत हुई । प्रतिदिन उनके आचरण का परिवर्तन प्रतीत होने लगा । वैदिक गणेश मार्ग का बोध वे संस्कृत भाषा के माध्यम से करने लगीं । शास्त्र-चर्चा, वेदांत सिद्धांत से संबद्ध वादविवाद अथवा वेद के गूढ़तम सिद्धांत पर विवेचन आरंभ किया । उनकी इन बातों से श्रीमोरेश्वर शास्त्री जी को परम आनंद होता था । दोहद के सिलसिले में देवी सुशीला माता ने भविष्य का स्मरण करते हुए भाष्य करना प्रारंभ किया । ''मैं गणेशधर्म के उत्थान हेतु अवतीर्ण हुआ हूँ । गाणेश प्रस्थानत्रय मुद्गल पुराण जो विलुप्त हुआ है, उसे मैं प्रकट करूँगा । पाखंडियों के मतों को मैं सरलता से काट दूँगा । षड्विध गाणपत मार्ग का पुनश्च जागरण कराऊँगा । श्रीमद् गणेशगीता तथा गणेशसहस्रनाम के रहस्यों को विवेचनात्मक पद्धति से खोल दूँगा । मेरी संन्यास लेने की इच्छा हो रही है । मैं मोरेश्वर क्षेत्र जानेवाला हूँ । उस क्षेत्र का जीर्णोद्धार करने वाला हूँ ।'' देवी सुशीला माता के विचित्र दोहद तथा मुख पर विलसित दीप्ति को देख विश्वास होने लगा कि इनकी कोख से भगवद्भक्त अथवा साक्षात ईश्वर ही अवतीर्ण होने वाले हैं । फिर भी उनका आचरण विचित्र प्रतीत होता था । परंतु बीच में घटित इन घटनाओं का तात्पर्य ज्ञान होने के कारण श्री मोरेश्वर शास्त्री जी शांत थे ।

प्रतिदिन विकसित होने वाले गर्भ के कारण देह बोझिल बनने लगी थी । सद्वृत्त तथा सदाचारी लोगों के घर ही महान विभूतियाँ जन्म लेती हैं । सृष्टि-नियम का यथातथ्य पालन हुआ प्रतीत हो इस प्रकार नौ महीने पूरे होते ही यथोचित समय श्रावण शुक्ला

पंचमी, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के रहते शालिवाहन शक चौदहसौ निन्यानबे के शुभ दिवस पर सुबह पंचग्रहों की उपस्थिति में ईश्वरावतार सूचक ईश्वर नाम संवत्सर में श्रीगणराज कृपांकित गाणपत महायोगी श्रीमुद्गलाचार्य भूतल पर अवतीर्ण हुए । शुभ मुहूर्त पुत्रजन्म का समाचार सुनते ही श्री मोरेश्वर जी के मुख से जाने अनजाने में 'जय जय गणराज समर्थ' इस प्रकार आवेशपूर्ण शब्द निकले और पुत्र मुख अवलोकन हेतु वे मंगल स्नान कर पधारे । प्रसवगृह में प्रवेश किया । जब उन्होंने अपने पुत्र के लुभावने रूप, प्यारे मुखकमल तथा दिव्य कांति का अवलोकन किया तो परमानंद हुआ । उन्हें लगा कि उनके अनंत जन्मों के पुण्य का प्रताप ही सफल हुआ है । बालक जन्मत: आजानुबाहू था । हृदयस्थान पर सिंदूरवर्णीय श्रीगणेश-मूर्ति का चिह्न था । बालक के दक्षिण हस्तपर अंकुश तथा वाम हस्त पर मुद्गर चिह्न अंकित था । चरणों पर परशु, अंकुश, वज्र तथा पद्मचिह्न थे । बालक के इस रूप को देख सभी को श्रीगणराज-प्रसाद-प्राप्ति का आनंद हुआ । वाद्यघोष हो रहा था । गंधर्व भी सुस्वर स्तुतिगान कर रहे थे । देवि-देवता गुप्त रूप में प्रसवगृह में आकर दूर्वा, शमी, पुष्प अर्पण कर गए ।

अपने पुत्र का मुखावलोकन कर श्री मोरेश्वर ने पुन: स्नान किया । श्री गणराज प्रभु का पूजन किया । विधिपूर्वक जातकर्म संस्कार किए । घर-घर शर्करा वितरित की गई । विद्वान ब्राह्मणों को दान दिए गए । इस प्रकार दस दिन प्रसन्नता में व्यतीत हुए । श्री मोरेश्वर शास्त्री जी पर बधाइयों की वर्षा हो रही थी । दस दिन होते ही श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने अपने पुत्र के ग्रहों के अनुसार भविष्य-कथन करने ज्योतिषियों को आमंत्रित किया । बच्चे

की उच्च ग्रहस्थिति देख वे चकित हुए । उन्होंने कहा, ''हे, परम सौभाग्यशाली मोरेश्वर शास्त्री जी, आपका यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है । किसी महान योगी ने ही देह धारण की है । हजारों वर्षों में शायद ही संभव हो ऐसी ग्रहस्थिति विद्यमान है । ग्रहों की ऐसी स्थिति पर कोई असाधारण श्रेष्ठ योगी सम्राट ही जन्म लेता है । इस बालक की जन्मपत्री में वैराग्ययोग है । यह प्रखर बुद्धिमत्ता का धनी होगा । हाथों में अंकित अंकुश तथा मुद्गर चिह्न के फलस्वरूप यह संन्यासी होगा । बालक के जन्म के समय सिंह लग्न होने के कारण यह पाखंडियो के विरोध में सिंहगर्जना करेगा तथा उन्हें जड़मूल से नष्ट करेगा ।''

श्रीगणेशगीता में प्रभु श्रीगणराज ने श्रावण महीने का उल्लेख अपनी विभूति के रूप में किया है । श्रावण मास में इस बालक का जन्म हुआ अर्थात सगुण रूप में श्रीगणेश विभूति ने जन्म लिया । श्रावण मास याने श्रावण इस अर्थ से प्रस्तुत बालक योगींद्र आगे चलकर जो भी शब्द उच्चारित करेगा उसे श्रवण किया जाना चाहिए; इसी लिए इस बालक का जन्म श्रावण महीने में हुआ । बालक योगींद्र के जन्म दिवस पर नागपंचमी थी । नागसे तात्पर्य है पाप-पुण्य के अतीत स्थित शेष अर्थात पूर्णयोग स्थिति । याने सभी विकारों से परे स्थित शेष नाग प्रतीकात्मक गणेश संप्रदाय में चतुर्थी की असाधारण महिमा है । चतुर्थी अर्थात तीन अवस्थाओं - जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति (गहरी नींद) के पूर्ण होने पर चौथी अवस्था - तुर्यगा - आत्मबुद्धि । तत्पश्चात पंचमी सिद्ध करना अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं महाकारण नामक पंचम स्थिति । इन कारणों का अधिष्ठान रूप ब्रह्मस्थिति पंचमी को सिद्ध करने वाले प्रभु श्री गणराज है; इसी लिए वे स्वयं पंचमी के दिन

श्रीमोरेश्वर जी के घर अवतीर्ण हुए । बालक का भविष्य कथन कर भविष्य कथनकर्ता लौट गए । किंतु उभय दंपती बालक के भविष्यवर्णन का स्मरण करते हुए आनंद मग्न हो गए । इसी तरह पुत्रजन्म के बाद बारह दिन व्यतीत हो गए । पुत्र का नामकरण क्या किया जाए इसी विचार में दोनों सो गए । पुन: श्रीगणराज प्रभु उनके स्वप्न में आए और उन्होंने कहा, ''हे मोरेश्वर, हे सुशीला, महायोगी मुद्गल मेरे लिए प्राणप्रिय है । उसी का अंश आपके पुत्र के रूप में प्रकट हुआ है । अत: उसका नामकरण गणेश किया जाए जिससे कि ऐसा प्रतीत हो मानों हम ही प्रकट हुए हैं ।'' इतना कहकर प्रभु अंतर्हित हो गए । जगने पर दोनों ने कृतार्थ हो प्रभु श्रीगणराज को प्रणाम किया । दुसरे दिन बड़ी धूमधाम से नामकरण विधि संपन्न हुआ । देवी सुशीला माता ने बालक को पालने में रखा । श्री प्रभु के आदेशित 'गणेश' नाम से उसे पुकारा गया । 'गणेश' नामकरण किया गया । पालने को झुलाते हुए लोरी गाई गई । नामकरण-विधि के एक अंग के रूप में ब्राह्मणों सुहागिनों को भोजन-दक्षिणा, खंड-श्रीफल से सुहागिनों की कोंछ भरना आदि कार्यक्रम यथाविधि संपन्न हुए । नामकरणविधि के लिए उपस्थित हर कोई अलौकिक सौंदर्य समारोह मन में सँजोता हुआ प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गया ।

।। श्रीमद्गणेशयोगींद्राचार्य चरणकमलार्पणमस्तु ।।

।। श्रीमद् गणेश योगींद्र बाललीलाएँ ।।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस कहावत के अनुसार बालक की लीलाओं से उसकी महिमा ज्ञात होती है, उसकी श्रेष्ठता तथा उसकी कोटि हम आजमा सकते हैं और उसी प्रकार का निष्कर्ष निकालते हैं । पुण्यात्माओं की बाललीलाएँ नि:संदेश भावी महिमा की द्योतक होती हैं । बालगणेश के दर्शन इतने आकर्षक थे कि आंबी ग्रामवासी कुछ-न-कुछ बहाना बनाकर मोरेश्वर शास्त्रीजी के घर आते थे और बालक का लुभावना रूप देखकर लौट जाते थे । ग्रामवासियों पर यह शौक ही चढ़ा था । वे कहते थे, ''सचमुच हमारा परम सौभाग्य है कि यह भालचंद्र हमारे घर जन्म ले चुका है ।'' उसकी नित्य-नूतन हरकतें पति-पत्नी को मोह लेती थीं । कुछ ही दिनों में बाल गणेश घुटनों के बल रेंगने लगा । उसकी नित्य-नूतन लीलाओं ने माता-पिता को मोह लेना आरंभ किया था । माता सुशीला देवी जब उसे दुग्धपान के लिए लेती थीं, तब दुग्धपान के अनंतर वे अचंभित हो उसे निहारती रहती थीं । क्योंकि वह बालक दुग्धपान के पश्चात योगी की तरह ध्यानस्थ हो जाता था । जैसे ही बाल गणेश ने घुटनों के बल चलना आरंभ किया, पूरे घर को ही मैदान बना डाला । उसका घुटनों के बल रेंगना प्यार-दुलार और सराहना का विषय बन गया । घुटनों के बल रेंगता हुआ वह सीधा देवघर पहुँच जाता था । श्रीगणेश की मूर्ति की ओर निर्निमेष निहारता रहता था । दूर्वा-शमी चढ़ाता था, सर्वांग में सिंदूर विलेपन करता था । बाल गणेश हर बात में पिता का अनुकरण करता था । उसकी इन

लीलाओं से श्री मोरेश्वर आदि लोगों का दुलार उमड़ता था । अपने पिता की तरह हाथों से सिर पर कुट्टन करता हुआ कान पकड़कर दंड प्रणाम करता था । मुख से तोतली वाणी में 'जय जय गणेश गजानन । जय हेलंब विघ्न हलन' इस प्रकार उच्चारण करता था । श्री मोरेश्वर जब जाप के लिए बैठते थे तो बाल गणेश उनकी गोद में चढ़कर उनके हाथों की जपनी खींच लेता था और स्वयं जाप करने बैठता था । घर पर मोरेश्वर जी द्वारा छात्रों के लिए श्री गणेशदर्शन विषयक अध्यापन आरंभ करते ही बाल गणेश वहाँ आकार, पिता के गले में हाथ डालकर उनके कपोलों को चूमने लगता था जिससे कि मोरेश्वर जी का बोलना खंडित हो जाता था । इससे यही अर्थ सूचित हो जाता है कि 'जब मैं साक्षात् मुद्गल - यहाँ हूँ तो दूसरा कोई भी गणेश-दर्शन पर बात नहीं कर सकता । अब वह मेरा कार्य है ।' बाल गणेश की लीलाओं से, उसकी सभी क्रीड़ाओं से पिता श्री मोरेश्वर जी को प्रसन्नता मिलती थी । बाल गणेश अब चलने लगा । घर की दहलीज पार कर आँगन में आने लगा । आँगन में भी वह श्री गणेश भक्ति प्रधान खेल ही खेलता था । आँगन की धूलि में श्रीगणेश की मूर्ति साकार की जाती थी । फिर उसी धूलि से वह मूर्ति पर पूजानुष्ठान करता था । दिनभर इसी प्रकार का पूजन चलता रहता था । इस खेल में अन्य बालक भी उसके साथी-मित्र के रूप में उसके साथ सम्मिलित होते थे । शमी-मंदार वृक्ष की छाया में यह खेल चलता था । उसे खाने-पीने तक की सुध-बुध नहीं रहती थी । फिर खाने के लिए उसे बलपूर्वक घर ले जाना पड़ता था । अंततोगत्वा माता सुशीला देवी बाहर शमी वृक्ष के नीचे ही बाल गणेश को खिलाने - पिलाने लगीं । अब वह अपने मित्रों को श्रीगणेश कथाएँ सुनाने

लगा । कथा के अनंतर 'जय जय हेरंब गजानन । गणेश मूषकध्वज अघहरण । विघ्नेश लंबोदर परेश जय विनायक' का घोष होता था । वह स्वयं 'गणेशाय नमः' इस प्रकार जाप करता था और अपने मित्रों को भी जाप करने के लिए उद्युक्त करता था । बाल गणेश के साथी बालक सचमुच ही सौभाग्यशाली थे क्योंकि उन्हें सहज ही गणेश के सख्य का लाभ होता था । धीरे-धीरे समय बीतता गया । बाल गणेश ने उम्र के सात साल पूरे किए । श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने उसका मौंजी बंधन करना निश्चित किया ।

भारतीय संस्कृति में मौंजीबंधन को उपनयन संस्कार कहा जाता है । वेदविद्या का अध्ययन करने हेतु उपनयन संस्कार आवश्यक है । इस संस्कार के बिना ब्राह्मण 'द्विज' नहीं कहला सकते । उपनयन संस्कार के अनंतर ही वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है । इसके पश्चात उपनीत बटुओं को वेदाध्ययन के लिए गुरुगृह भेजा जाता था । वहाँ वे ब्रह्मचर्य का स्वीकार करते थे । गुरू के समीप रहकर वेदाध्ययन पूर्ण होने तक गुरुगृह में ही रहना पड़ता था । वैदिक धर्म में विश्वास रखने वाले धर्मनिष्ठ श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने उपनयन समारोह में आंबी के समूचे ग्रामवासियों को आमंत्रित किया था । शास्त्र-वर्णन के अनुसार गायत्री मंत्र से श्रेष्ठ अन्य कोई मंत्र नहीं है । भगवान श्री गणेश की कृपा से उस मंत्र के अनुष्ठान हेतु पात्र बाल गणेश को श्री मोरेश्वर शास्त्रीजी ने गायत्री मंत्र का उपदेश करते हुए आशीर्वाद दिया । उपनयन संस्कार का तेज कुछ अनोखा ही होता है । उस तेज के प्रभाव से बाल गणेश ब्रह्मतेज से दमकने लगे । मौंजीबंधन होते ही मेखला, यज्ञोपवीत तथा कौपीन से मंडित बाल गणेश अत्यंत मनोहर दीखने

लगा । संध्यावंदन का आरंभ हुआ । माध्याह्न काल की समाप्ति पर सिंदूरधारी बाल गणेश भिक्षा के लिए निकला । साक्षात महायोगी का ही भिक्षाटन हेतु निकलना प्रतीत हुआ । सभी ने बालगणेश को यथोचित भिक्षा अर्पण की । तत्पश्चात श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने उसे शौचाचारों तथा सकल धर्माचरण का उपदेश दिया । यह भी बताया कि द्विज को, ब्रह्मचारी को किस प्रकार जीवनयापन करना चाहिए । संध्याविधि विषयक मार्गदर्शन किया । श्रीगणेश उपासकों के लिए चतुर्वेदों में निहित 'गणनांत्वा' इस वैदिक मंत्र का उपदेश किया । इस प्रकार बाल गणेश ने अपने नित्योपासना क्रम को निश्चित कर उसके अनुसार उपासना आरंभ की । वह सुबह जल्दी उठकर शौचाचारों को निपटाकर श्री गणेशस्तोत्रपाठ करते हुए स्नानादि कार्यों से विरत होकर भालप्रदेश पर सिंदूर धारण कर कौपीन मंडित कृष्णाजिन पर आसनस्थ होकर संध्यावंदन, गायत्री मंत्र का पांच-सौ की संख्या में जाप और तदनंतर श्रीगणेश मंत्र का अनुष्ठान करता था । सुबह शाम दोनों समय यथोचित अग्निकार्य करता था । उसने भिक्षाचर्य का स्वीकार किया था । दोपहर के उपरांत गणेश ग्रंथों का वाचन, स्तोत्रपाठ इस प्रकार श्रीगणेशोपासना चल रही थी ।

बालगणेश श्रीगणेश उपासना के आरंभिक पाठ अपने पिता से ही सीख रहा था किंतु श्री मोरेश्वर जी का गणेशज्ञान अल्पावधि में संपन्न हुआ और परिपूर्ण वेदाध्ययन करने बालगणेश को गुरुगृह भेजने की योजना की गई । उसके अनुसार गणेश धर्मनिष्ठ शास्त्री के रूप में ख्यातकीर्त, श्री सोमनाथ क्षेत्र के श्री विनायक शास्त्री जी के पास वेदाध्ययन हेतु बालगणेश को भेजा गया । उस आश्रम में बालगणेश ने अल्पावधि में ही अपनी असामान्य बुद्धि से

वेदसंहिताएँ, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक समेत पूर्ण ज्ञान अर्जित किया । श्री विनायक शास्त्री जी ने बाल गणेश को अतीव स्नेह से उठा लिया और कहा, ''तुम्हारी कुशाग्र बुद्धि से मैं मोहित हुआ हूँ । अल्पावधि में इन चार वेदों को तुमने कैसे ग्रहण किया ? हे शिष्योत्तम, तुम सच्चे प्रज्ञावान हो । मेरे विद्यासागर के लिए तुम अगस्ति सिद्ध हुए हो ।'' तदनंतर अध्ययन संपन्न होने के कारण उन्होंने बालगणेश को घर लौटने की अनुमति दी । सकल शास्त्र विद्या संपन्न बनने हेतु जिन-जिन विद्याओं के संदर्भ में जो आचार्य प्रसिद्ध थे उनके पास जाकर बालगणेश संबंधित शास्त्रों अथवा विद्याओं में पारंगत बने । इन सभी का अर्जन अध्ययन करने के लिए वे भिन्न-भिन्न गुरुओं के शिष्य बने । बारह वर्षों की अवधि में बालगणेश धर्मशास्त्र, ज्ञानशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, न्यायशास्त्र, योगशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि शास्त्रविद्याओं में प्रवीण हुए । सभी प्रकार का विद्यार्जन करते हुए बालगणेश स्वगृह लौटे । वेदविद्यासंपन्न अपने पुत्र को देख माता-पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई । इस अवधि में श्रीमयूरेश वरदान के अनुसार उनके द्वितीय पुत्र हुआ जिसका नामकरण हेरंब किया गया । वेदविद्या संपन्न बन घर लौटे ज्येष्ठ बंधू श्री गणेश को हेरंब ने प्रणाम किया । श्री गणेश ने अपने अनुज को गले लगाया और उसे भी वेदविद्या की शिक्षा देकर पारंगत बनाया ।

श्री गणेश वेदविद्या पारंगत तो हो गए किंतु 'वैदिक गणेशदीक्षा प्राप्ति के बिना गाणपत अथवा गणेशज्ञानप्राप्ति होना संभव नहीं है' इसे जानते हुए उन्होंने पिता के चरणों में प्रार्थना की, ''तातश्री, आपने स्वानंदेश श्रीगणेशकृपा का अनुभव किया । किंतु मंत्र अथवा पूजा-ग्रहण करना ही वैदिक दीक्षा नहीं है । आज तक

मैंने लौकिक विद्‌याज्ञान का अर्जन किया । अत: कृपापूरित हो आप मुझे यथाविधि गाणेशदीक्षा प्रदान करें ।'' अपने पुत्र के विनम्र मृदुवचनों की सून श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने श्री गणेश को आलिंगन देते हुए कहा, ''आपकी इच्छा मैं अवश्य पूर्ण करूँगा । किंतु लुप्त गणेशज्ञान एवं वैदिक उपासना के प्रकाशनहेतु यदि आपका अवतरण हुआ है तो इन सभी बातों को मैं कैसे प्रदान कर सकता हूँ ? आपको ये सभी विधियाँ ज्ञात हैं । मेरे द्‌वारा उनका बताया जाना हास्यास्पद है । फिर भी शास्त्रों के अनुसार इन्हें मैं आपको प्रदान करता हूँ ।'' इतना कहकर वे पंचसंस्कार प्रदान करने सिद्‌ध हो गए । श्रीगणेश ज्ञानप्राप्ति हेतु वर्ण, भक्ति, विरजा, सिंदूर तथा तिलक इन पाँच प्रकारों का कथन किया गया है । इस प्रकार शुभ दिवस पर श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने गणेश दीक्षा-विधि का आरंभ किया । वर्णसंस्कार के लिए श्री मोरेश्वर जी ने सवा लाख गायत्री जाप पूर्ण करने के लिए कहा । गायत्री-जाप का पुरश्चरण करने का आदेश दिया । संपूर्ण ज्ञान ग्रहण करने के लिए बुद्‌धि का शुद्‌ध होना अनिवार्य होता है । वह शुद्‌धि गायत्री जाप से होती है । द्‌वितीय संस्कार है भक्ति संस्कार । उपास्य देवता की उपासना सुयोग्य सिद्‌ध होने के लिए अध्ययन, वाचन, चिंतन उपयुक्त प्रमाणित होता है । उसके लिए श्री मोरेश्वर जी ने श्रीगणेश जी को श्रीगणेश पुराण के दस पारायण करने को कहा । श्री गणेश पुराण सहित अन्य गणेश ग्रंथों का भी वाचन करने का आदेश दिया । श्री गणेश दर्शन के संदर्भ में उपनिषद तथा स्कंदपुराणोक्त विनायक माहात्म्य इन ग्रंथों का पठन करने की सूचना की । तृतीय संस्कार विरजा संस्कार कहलाता है । इसमें यज्ञ संस्कार का अंतर्भाव होता है । लौकिक विषयों के प्रति विरक्ति प्राप्त होने के लिए

संसारासक्ति को आहुति के रूप में यज्ञ में अर्पण किया जाता है । इससे तात्पर्य है कि गणेश भक्ति की विरोधी भावनाओं को जलाकर राख करना तथा वृत्तिनिग्रह करना । इस के अनुसार श्री मोरेश्वर जी ने श्रीगणेश के हाथों यज्ञविधि संपन्न कराई । गणेश याग संपन्न कराया । चतुर्थ संस्कार है सिंदूर संस्कार ! माथे पर सिंदूर धारण किए बिना किसी भी प्रकार का गणेशकार्य किया नहीं जा सकता । सिंदूर धारण करने से मानसिक स्तर के लुप्त अथवा अप्रकाशित गाणपत्य संस्कार प्रकट होते हैं । सिंदूर सिद्ध करने के लिए श्री गणेश जी अथर्वशीर्ष का उच्चारण कर रहे थे । वे नित्य षट्काल अथर्वशीर्ष पठन करते थे । पंचम संस्कार तिलक संस्कार के रूप में ज्ञात है । गणेश संप्रदाय में पंचगंध की निर्मिति होती है । प्रस्तुत संस्कार गंध-धारण-विधि है । इस प्रकार श्री गणेश जी के पाँचों संस्कार संपन्न हुए । वर्णसंस्कारों में गायत्री मंत्र का समावेश होता है । जिससे कि तेजोमयता की वृद्धि होती है । भक्तिसंस्कारांतर्गत श्रीगणेशपुराणादि ग्रंथों के पठन से भगवान श्रीगणेश का वैभव ज्ञात होता है । सिंदूर संस्कार से गणेशेतर अथवा गणेश-विरोधी भाव नष्ट होते हैं । निश्चलता प्राप्त होती है। तिलक संस्कार से गणेश सिद्धांत के प्रति स्पष्टाकृतित्व उत्पन्न होता है । तत्पश्चात श्री गणेश जी को वल्लभेश मंत्रादि सभी वैदिक मंत्र जो कि नाममंत्र के रूप में मान्यता प्राप्त हैं - बताए गए । तदनंतर श्री मोरेश्वर शास्त्री जी ने श्री गणेश जी के विधिपूर्वक एकार्ण महामंत्र का उपदेश किया । एकार्ण महामंत्र की दीक्षा दी । जिस दिन उन्हें उक्त दीक्षा प्रदान की गई उसी दिन उन्होंने जप की लघुसंख्या पूर्ण की और सच्चे अर्थ में, यथार्थ रूप में वे गाणपत बने । इसके बाद श्री गणेश जी ने शास्त्र ग्रंथों में कथित वर्णन के अनुसार एकाक्षर

महामंत्र से अनुष्ठान पूर्वक श्रीगणराज की उपासना आरंभ की । कीलक, कवच, हृदय, शीर्ष, सूक्त, सहस्रनाम आदि अंगों समेत गणेश संध्यान्वित मंत्र के साथ उपासना का आरंभ किया । श्री गणेश जी प्रात: ब्राह्म मुहूर्त पर निद्रा त्यागते थे । मानसपूजा करते थे । स्नानोपरांत रक्तचंदन, सिंदूर धारण कर, रक्तवर्ण वस्त्र परिधान करके, शमी-मंदार से बनी स्मरणी लेकर भूमि को शुद्ध करके आसनस्थ होकर, आचमन कुट्टनादि विधि संपन्न करते हुए गाणेशी संध्या करते थे । संध्याविधि के अनंतर कीलक, कवच आदि के पाठ करने पर बारह हजार की संख्या में मंत्र-पाठ करते थे । जाप के पश्चात पूजा के लिए दूर्वा लाने जाते थे । पठन-संपृक्त पूजन होता था । फिर एकार्ण मंत्र का जाप करते थे । इस तरह श्री गणेश जी ने घर में वास्तव्य करते हुए गणेशोपासना की । इस प्रकार की सशास्त्र उपासना के फलस्वरूप श्री गणेश जी की गणराज-दर्शन-विषयक बेचैनी तीव्र बनी । एक दिन प्रभु श्री स्वानंदनाथ गणराज श्रीगणेश जी के सम्मुख प्रकट हुए और उन्होंने स्वप्न-दर्शन देते हुए कहा, ''हे बालक गणेश, तुम्हारे भक्तिपूर्ण अनुष्ठान से हम प्रसन्न हुए हैं । तुम्हें दर्शन देने हम अपने परिवार समेत उपस्थित हुए हैं ।'' श्री गणेश जीने सामने देखा तो सिंदूर धारण किए गजमुखधारी श्री गणराज प्रभु, चतुर्भुज रूप में, दोनों हाथों में पाश तथा अंकुश लिए साक्षात खड़े थे । उनके दोनों ओर सिद्धि देवी और बुद्धिदेवी विराजमान थीं । गले में चिंतामणि रत्न विलसित था । इस प्रकार के वैभवसंपन्न दर्शन प्रभु श्री गणराज ने दिए और वे कहने लगे, ''तुम्हारे भक्तिपूर्ण प्रेम के फलस्वरूप हम दौड़ते हुए आए हैं । पूर्णतया वशीभूत होकर वरदान देने उपस्थित हुए हैं । जो चाहे माँगो ।'' श्री गणराज प्रभु की वाणी श्रवण कर,

उन्हें प्रणाम करके श्री गणेश जी ने कहा, ''हे भगवान स्वानंदनाथ, आपकी कृपा से ही मुझे आपके प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं । मैं क्या माँगूं ? फिर भी मेरी एक ही याचना है । आपकी अखंड, एकनिष्ठ, नवरसयुक्त अचल भक्ति आप मुझे प्रदान करें । मुझे आपके पूर्ण स्वरूप की संपूर्ण भक्ति प्राप्त हो ।'' ऐसी प्रार्थना सुनकर प्रभु श्री गणराज अतीव प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, ''श्री मुद्गलाचार्य ने भी यही प्रार्थना की थी और आचार्य श्री मुद्गल ने ही इस देह को धारण किया है ।'' उन्होंने आगे कहा, ''भारत वर्ष में वैदिक गणेशमार्ग लुप्त हुआ है । उसी के उद्धार के लिए तुम्हारे पिता मोरेश्वर और माता सुशीला जी के यहाँ मेरे आदेशानुसार श्री मुद्गल ने जन्म लिया है । वरदान प्रदान करते समय आशीर्वाद भी दिया गया था कि 'धर्म संस्थापना हेतु ज्येष्ठ पुत्र' मुझे सौंप दिया जाए; संन्यास ग्रहण कर वह मेरा कार्य संपन्न करेगा ।' अत: अपने पिता को इसका स्मरण करा दो । तत्पश्चात शृंगेरी पहुँचकर चिंतामणि योगींद्र की शरण में जाकर संन्यास धारण करो । वहाँ विशेष दीक्षा प्राप्त कर भूस्वानंदक्षेत्र मयूरेश्वर में मेरे निकट निवास करने आ जाओ ।'' प्रभु ने उसे पुन: आलिंगन देकर, उसके मस्तक पर प्रसादी पुष्प रखा और प्रभु श्रीगणराज अंतर्हित हो गए । सुखद अनुभूति से परिपूर्ण इस स्वप्न के समाप्त होते ही श्री गणेश की आँख खुल गई । देखा तो प्रसादी रूप मोदक नज़र आया । श्रीगणराज प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन एवं प्रसाद-भक्षण से उसके मन में प्रभु श्री गणराज की आज्ञा के पालन का विचार उभर आया । समूचे आह्निक एवं पूजा-समाप्ति के बाद दोपहर में भोजनोपरांत श्रीगणेश ने अपने माता-पिता-देवी सुशीला और श्री मोरेश्वर - तथा बंधु हेरंब को बुलाया । रात्रि में स्वप्नांतर्गत गणेश-दर्शन के बारे

में बताते हुए उन्हें श्रीमयूरेश के वरदान का स्मरण दिलाया । और विनम्र प्रार्थना की कि गणेश धर्म संस्थापना के लिए संन्यास धर्म धारण करने हेतु शृंगेरी पीठ के आचार्य श्री चिंतामणि योगींद्र के पास वेददीक्षा ग्रहण करने के लिए जाने की अनुमति एवं आशीर्वाद दिए जाएँ । श्री गणेश के इस प्रार्थनापूर्वक मधुर भाषण को श्रवण कर माता-पिता को ऐसा प्रतीत हुआ मानों यह मृदु-मधुर वाणी न होकर वज्राघात करने वाली वाणी है । श्री गणेश के बिना जीने की कल्पना भी उन दोनों के लिए असहनीय थी । अत: जाने की अनुमति कैसे दी जा सकती है ? इस प्रकार के पुत्रमोह के फलस्वरूप अनुज्ञा नहीं मिल रही थी । प्रभु श्रीगणेश के कृपादृष्टिपात से मोह नष्ट हुआ । श्री मोरेश्वर जी के सम्मुख भूतकाल झलकने लगा । पुत्रकामना पूर्ति के लिए किया हुआ व्रताचरण, श्रीगणराज प्रभु का वरदान आदि सब समझ में आया और मोहग्रस्त होने पर भी मायापाश से कुछ लाभ नहीं होगा इसे जानकर उन्होंने प्रसन्न अंत:करण से अनुमति प्रदान की । अनुमति देते समय माता-पिता दोनों ने प्रार्थना की ''हमारे अंतकाल में आप भी हमारे निकट रहें ।'' श्री गणेश जी ने कहा, ''आपकी इच्छा के अनुकूल ही सब होगा ।''

शृंगेरी मठ की ओर प्रयाण करने से पूर्व श्री गणेश जी ने अपने अनुज हेरंब को आलिंगन देकर अपने द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान उसे बोधरूप में कथन किया । शास्त्रों के गूढ़तम सिद्धांत समझा दिए । मानों गणेश संप्रदाय के साधकों के लिए नियमावली ही बता दी । जो भी गणेश दीक्षित होंगे, वे ब्राह्म मुहूर्त पर निद्रा का त्याग करें, शौचाचार विधियों से विरत होकर शुद्ध बनें । मंत्रोच्चारण करते हुए सिंदूर तथा गंध धारण कर आसन लगाकर

स्थिर हो जाएँ । श्री सद्गुरु की मानसपूजा करें । फिर श्रीस्वानंदनाथ गणराज प्रभु का पूजन करें । साधक यदि दुर्बल हो तो मानसपूजा का पाठ करे । प्रभाती समेत प्रात:स्मरण करें । तत्पश्चात स्नानादि विधियाँ संपन्न करें । स्नान करते समय ब्रह्मकमंडलु स्तोत्र का गान करें । स्नानोत्तर रक्तवर्ण वस्त्र परिधान करें । सभी गंध-सिंदूर धारण करें । दीक्षित हों या अदीक्षित; दोनों का सिंदूर धारण करना अत्यावश्यक है । बिना सिंदूर धारण किए, की गई उपासना निष्फल होती है । अशौचादि समय पर सिंदूर धारण न करें; मात्र रक्तचंदन का प्रयोग करें । सिंदूर, गंध, पुंड्र धारण किए बिना गणेशपाठ पूजन न करें । शमी तथा मंदार की मालाएँ धारण की जाएँ । प्रतीकारंभ में आचमन के पश्चात ''शुक्लांबरधर'' नामक कुट्टन प्रकार करें । गणेशसंध्या, कीलक, कवच का पाठ करें । बारह सहस्र संख्या में जाप करें । जपांत में गणेश हृदय तथा शीर्ष पठन करें । वैदिक गणेश दीक्षित लोग गायत्रीजपादि सहित गणेशाग्नि होम भी करें । तत्पश्चात श्रीगणेश पूजन किया जाए । विधिपूर्वक स्थिर मन से षोडषोपचार पूजन करें । उपचारों में शमी तथा दूर्वाएँ अर्पण करें । ध्यायानुचिंतन किया जाए । श्रीगणेश को नैवेद्य समर्पित कर भोजन ग्रहण करें । अपराहणकाल में दोपहर के समय वृत्तिव्यवहार तथा शास्त्रार्थ विचार किया जाए । संध्यासमय सायं संध्या जपादि करें । नित्य जपसंख्या पूर्ण करें । प्रतिवर्ष की कालावधि में बारह लाख जपसंख्या पूरी होनी चाहिए । दोनों चतुर्थियों को व्रत रखें । सहस्रयुत दूर्वार्चन करें । शुक्ला चतुर्थी के दिन दोपहर में तथा कृष्णा चतुर्थी को चंद्रोदय पर पूजा करें । रात्रि में सदैव गणेशभजन करें । सोने से पूर्व कवच पाठ करें । सिंदूर धारण कर सो जाएँ । प्रतिवर्ष मयूरेशयात्रा करें । गणेश क्षेत्रों

के दर्शन करें । यथाक्रम सिद्धनिष्ठ हो जाएँ । आगे चलकर उन्होंने अष्टादशलक्षण गणेश-धर्म मे लक्षणों को भी प्रस्तुत किया - सिंदूर विलेपन, तिलक धारण, शमी-मंदारधारण, गणेश मंत्र का जाप, दूर्वार्चन, दोनों चतुर्थियों को उपवास-व्रत, मयूरेश दर्शन यात्रा, गणेश ग्रंथ वाचन, गणेश के प्रति सर्वस्व भावेन प्रेम करना, गाणपत्य लोगों के प्रति आत्मीयता, अन्य देवि-देवताओं की स्तुति या निंदा न करना, शैव-वैष्णवादि सर्वत्र गणेशांश भाव रखना; अहिंसा, सत्य, संतोष, क्षमा तथा ब्रह्मचर्य इन गुणौ का अंगीकार करना । इस प्रकार के गणेश धर्म का आचरण कर्ता भी परम एकांतनिष्ठ प्रसिद्ध गाणपत सिद्ध होगा । अब गणेशभक्तों के लिए वर्जनीय बातें - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन विकारों में न फँसें; वृथा अभिमान, दंभ, अहंकार को स्थान न दें; राजस-तामस कार्य वर्ज्य करें; दूसरों की वस्तुओं का अपहरण, परद्वार तथा परपीडन से दूर रहें; दया, सत्य, सदाचार का पालन करें; प्रेमयुक्त, भावपूर्ण अंत:करण से भक्तराज श्रीगणेश का पूजन करें । ऐसे अनेक प्रकारों से गणेश जी ने श्री हेरंब को गाणपत्य धर्म का उपदेश दिया । श्री हेरंब जी के बहाने समूचे लोगों को ही इस उपदेश का लाभ हुआ । माता-पिता की अनुमति प्राप्त होते ही जगत्कल्याण हेतु श्री गणेश जी आंबी ग्राम छोड़कर जाने वाले हैं इसे सुनकर सभी को दुख हुआ । ग्रामवासियों ने उन्हें रोकने की कोशिश भी की; किंतु श्री गणेश जी पर उसका असर नहीं हुआ । प्रेमपूर्वक कृतज्ञता प्रकट कर श्री गणेश जी शृंगेरी मठ की ओर चल पड़े ।

।। श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य पादार्पणमस्तु ।।

श्रीमद् गणेश योगींद्र महाराज – सद्गुरु समाश्रय

श्री गणराज प्रभु के आदेशानुसार विशेष दीक्षा संपादन करने, संन्यास ग्रहण करने तथा श्रीसद्गुरु सेवा आचरण एवं अनुग्रह प्राप्ति के लिए श्री गणेश जी आंबी ग्राम से दक्षिणी प्रदेश स्थित शृंगेरी मठ की ओर चल पड़े । मंजिल – पर – मंजिल तै करते हुए वे शृंगेरी मठ तक आ पहुँचे । वहाँ आने पर मठस्थान के देवताओं के दर्शन कर मठाधिपति श्री चिंतामणि आचार्य को प्रणाम किया । श्री चिंतामणि आचार्य को भी अपने भतीजे अर्थात श्री मोरेश्वर पुत्र श्री गणेश को देख प्रसन्नता हुई । फिर घर के क्षेम-कुशल को लेकर बातें हुई । श्री गणेश जी ने मठस्थान आने के विषय में श्रीगणराज प्रभु के आदेश तथा संपूर्ण जानकारी श्री चिंतामणि आचार्य के सम्मुख कथन की । इससे आचार्य को बड़ी संतुष्टि हुई । शायद उनके मन में विचार आया होगा कि 'अपने कुल, अपने परिवार का एक सदस्य भगवान की इच्छा से ईश्वरीय कार्य हेतु आगे आ गया ।' एक दिन एकांत समय देख श्री गणेश जी ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक आचार्य श्री चिंतामणि जी से प्रार्थना की, ''श्री गणराज कृपा एवं आदेश से तथा माता-पिता की आज्ञा से मैं आपके श्रीचरणों में आया हूँ । अत: मेरे दीक्षागुरु के रूप में पीठ संप्रदाय रक्षण हेतु आप मुझे संन्यास दीक्षा प्रदान कीजिए ।'' श्री गणेश जी की विनम्र प्रार्थना सुनकर श्री चिंतामणी आचार्य को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने कहा, ''वत्स गणेश, आज ध्यानानुचिंतन में हमें श्रीसुरेंद्रपाद योगींद्र का आदेश हुआ कि श्रीगणराज कृपा से गणेशधर्म संस्थापना हेतु आपका अवतरण हुआ है । अत: उसके

लिए विशेष दीक्षा तथा संन्यासदीक्षा प्रदान करने की आज्ञा तथा अनुमति प्रदान की जा रही है ।'' इसके अनुसार आचार्य श्री चिंतामणि जी ने सुयोग्य मुहूर्त पर श्री गणेश जी को संन्यास दीक्षा प्रदान की । गणेश महावाक्य तथा गणेश एकाक्षर मंत्र का विधिपूर्वक उपदेश किया । संन्यासाश्रम धारण करने के उपरांत उनका नामकरण 'श्रीगणेश योगींद्र' किया गया । संन्यासाश्रम में तीन प्रकार हैं-परमहंस तुरीय, महाहंस तुरीयातीत तथा अवधूत । मात्र गणेश पूर्ण सिद्धि संपादन कर सकते हैं । उसके अनुसार श्रीगणेश योगींद्र महाराज संन्यासाश्रमांतर्गत तुरीयातीत महाहंस संन्यासी बने । समूची संन्यासदीक्षा तथा विशेष दीक्षाविधि संपन्न होने पर श्री चिंतामणि आचार्य ने श्रीगणेश योगींद्र जी को नित्य पूजन हेतु श्वेतार्क गणेशमूर्ति प्रदान की । इसके अनुसार उन्हें अद्वैत संप्रदाय की प्राप्ति हुई । उसके अनुकूल श्रीगणेश योगींद्र जी ने सद्गुरु के सामीप्य में अनुष्ठान, जप, ध्यान सब कुछ किया और वे सिद्ध गुरुपद को प्राप्त हुए । किसी भी साधक के लिए भले ही वह अंशधारी भी क्यों न हो - सद्गुरु सेवा अनिवार्य होती है । अत: श्रीगणेश योगींद्र महाराज जी ने भी आचार्य श्री चिंतामणी जी की सेवा की; क्योंकि बिना सद्गुरु सेवा के शिष्यों को किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं होता । काया, वाचा तथा मन इन तीन प्रकारों से सद्गुरु-सेवा करनी पड़ती है । श्रीयोगींद्र महाराज जी ने भी इसी प्रकार अपने सद्गुरु श्री चिंतामणि आचार्य की सेवा की । इसी क्रम में गुरु-शिष्य के लक्षणों तथा कुलक्षण शिष्य के लक्षणों को ज्ञात कर लिया । इस कलियुग में शिष्य बड़े चतुर होते हैं । वे सद्गुरु का उपदेश सुनते तो हैं किंतु सुनने के उपरांत उनके मन में विकल्प उभरता है । स्वयं अपने को शास्त्र संपन्न, विद्यासंपन्न मानते हुए,

सद्गुरु को कम महत्त्वपूर्ण मानने लगते हैं । सद्गुरु द्वारा छोटा-बड़ा काम बताया जाने पर उन्हें अपना अवमान प्रतीत होता है । सुनकर भी वे अनसुना कर देते हैं । कुछ लोग लोकमान्य सद्गुरु के दिखाई देने पर अपने पहले अनुग्रहित मंत्रगुरु को अनदेखा कर, त्यागकर, इस जनप्रिय, लोकमान्य सद्गुरु से पुन: मंत्र ग्रहण करते हैं । गुरू की आज्ञा होने पर तत्क्षण तो हामी भरते हैं किंतु बाद में वह आज्ञा भूल जाते हैं । कुछ लोग सद्गुरू के सन्निध जागकर अशोभनीय आचरण करते हैं । कुछ शिष्य अपने गुरु को ही वितर्क ज्ञान बताते हैं । कुछ शिष्य अहंकार से भरकर गुरुनिंदा करते हैं । इन सभी बातों से गुरुद्रोह होता है । वह शिष्य विनष्ट होकर नरक को प्राप्त करता है । अब सच्छिष्य के गुणलक्षण प्रस्तुत हैं - ''परमार्थसिद्धि-प्राप्ति के इच्छुक शिष्य को चाहिए कि बिना किसी भी प्रकार के विकल्प के वह सद्गुरु की आज्ञा का पालन करे । गुरु का कोई भी कार्य गुरू के बताने से पूर्व ही अत्यंत प्रेमपूर्वक पूरा करे । गुरु की किसी आज्ञा का उल्लंघन हो जाए तो वह उसे महादोष प्रतीत होना चाहिए । किसी भी प्रकार का अन्य भाव मन में उभरने न देकर सद्गुरु ही सर्वज्ञ तथा उदार हैं इसी प्रकार का भाव उत्पन्न होना चाहिए । जो शिष्य गुरुकार्य को समझकर स्वयं अपनी ओर से सद्गुरु के कहने से पूर्व अथवा उनके द्वारा न कहे जाने पर भी पूर्ण करता है वही उत्तम शिष्य है । जो शिष्य गुरु के कहने के उपरांत काम करता है वह मध्यम शिष्य; और जो गुरु के आदेश के बाद भी कार्य नहीं करता वह अधम शिष्य है । जो गुर्वाज्ञाविरोधी कार्य करता है, टालमटोल करता है उसे अधमाधम समझना चाहिए । पेडों की जड़ो में जलसिंचन करने से उस जल के कारण वृक्ष विकसित होने लगता है । इसी प्रकार

सद्‌गुरुसेवा न करने पर संपूर्ण ज्ञानसिद्‌धि की प्राप्ति नहीं हो सकती । जिसके हाथों गुरुद्रोह होगा उसे नरक की प्राप्ति होगी । उसे देवता भी नहीं बचा सकते । यदि ईश्वर रूठ जाते हैं और सद्‌गुरु प्रसन्न हैं तो सभी देवता प्रसन्न हो जाएँगे अन्यथा नहीं होंगे । जो विरक्त है उसमें सद्‌गुरुविषयक विशुद्‌ध प्रेम उत्पन्न होगा ।'' आगे सद्‌गुरु के लक्षण भी प्रस्तुत किए हैं, ''सद्‌गुरु वर्णाश्रम से द्‌विज हों । वे शास्त्रज्ञान, आचारनिष्ठा एवं दैवी-संपद्‌ से युक्त हों । उनका वर्णाश्रम धर्म का परिपालन, उपासना दीक्षा का अनुष्ठान दंभरहित हो । कर्म, उपासना, भक्ति, ज्ञान इस प्रकार चतुष्कांड उपासना पद्‌धति का अवलंब करें । उनका आचरण काम, क्रोध, लोभादि विकारों से रहित हो । शिष्य-संप्रदाय-वृद्‌धि का लालच न रखते हुए अधिकारानुकूल उपदेश दें । शिष्यों के सभी तापों को बोधामृत पिलाकर शांत करने वाले हो । विविध संशयों का हरण कर भवबंधन को तोड़ शिष्यों को संतोष देने वाले हों; अंत:करण में पूर्णतया तृप्त, बाह्यतया स्वस्थान में स्थित, देह को प्रारब्ध पर सोंपकर बाह्यरूप में साधारण जनों की तरह आचरण करने वाले हों । उनकी वाणी नदी की गंभीर धारा की तरह हो जिससे कि अधिकारी साधकों के दोष धुल जाएँ । अभक्तों के हृदय में परिवर्तन हो वे भक्ति करने के इच्छुक बन जाएँ । निरंतर दृढ़निश्चय से परिपूर्ण, सत्कर्माचरण युक्त, भक्तिपूर्ण, ज्ञानपूर्ण वैराग्योपासना उन में विद्‌यमान हो । उनका समूचा कर्म वेदोक्त कर्माचरण हो । भगवत्‌ अथवा ईश्वरप्राप्ति के मार्ग का साधन प्रदान कर उस साधन की सहायता से स्वयं भी संतुष्ट रहने वाले हों । शिष्यों की रुचि के अनुकूल उपदेशकर्ता न हों ।'' ये लक्षण जिनमें प्रस्फुटित हों उन्हीं को सद्‌गुरु पद से सम्मानित किया जाए ।

श्रीगणेशयोगींद्र महाराज जी ने शास्त्रपरंपरा के अनुसार सद्गुरु श्री चिंतामणि आचार्य की अहर्निश सेवा की । उनकी इस सेवा से संतुष्ट हुए पीठाचार्य श्री चिंतामणि योगींद्र जी ने कहा, ''पीठ की अधिष्ठात्री देवी माता शारदाम्बा ने, आपको, लुप्त हुए गणेश संप्रदाय के प्रसार एवं संवर्धन करने तथा श्रीमद् गिरिजासुत योगींद्र महाराज द्वारा संस्थापित ब्रह्मभूय माहासिद्धि पीठ की ओर से गणेश-भक्ति के प्रसार हेतु मयूरेशक्षेत्र जाकर वैदिक गाणपत-संप्रदाय संस्थापना की सूचना करने की आज्ञा की है ।'' श्री चिंतामणि आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य मानकर श्रीगणेश योगींद्र महाराज जी ने सद्गुरु श्री आचार्य को प्रणाम किया । सद्गुरु-विरह से खिन्न हो, श्रीमयूरेश के दर्शन के लिए वे शृंगेरीपीठ से चल पड़े । श्री गणेश योगींद्र जी तब बीस वर्ष के हुए थे । श्रीक्षेत्र मयूरेश्वर उनकी आगामी समस्त लीलाओं का स्थान था । वे श्रीक्षेत्र मोरेश्वर जाने निकले । ''कब मैं अपने उपास्य देवता से मिलूँगा, कब स्वानंदनाथ प्रभु श्रीगणराज के दर्शन करुँगा'' यही एकमात्र भाव उनके हृदय में हिलोरे ले रहा था । श्री योगींद्रमहाराज जी निरंतर भजन करते हुए महाराष्ट्र के मोरेश्वर क्षेत्र के निकट आने लगे । यहाँ भगवान के मन में भी उनसे मिलने की तीव्र अभिलाषा जगी थी । वे भी अपने इस महाभक्त से मिलने उत्सुक थे । प्रभु श्री गणराज अपने गणों तथा सिद्धि-बुद्धि को अपने महाभक्त के स्वागत की तैयारियों की सूचनाएँ दे रहे थे । स्वयं श्रीगणराज प्रभु ने ही ग्रामवासियाँ को स्वप्न दृष्टांत देते हुए कहा कि हमारा महाभक्त आज श्रीक्षेत्र पधार रहा है । सुबह उठते ही ग्रामवासियों ने यह स्वप्न-समाचार एक दुसरे से कथन किया । उन्हें भी आश्चर्य हुआ और वे भी महाभक्त के स्वागत की पूरी तैयारियों में जुट गए । श्री शिव-विष्णु आदि चतुर्द्वार देवता

स्वागत के लिए प्रवेशद्वार के निकट खड़े थे । मुख्यद्वार देवता नग्नभैरव तथा अष्टविद्याएँ, अष्टसिद्धियाँ, मोद-प्रमोद भी स्वागत करने उपस्थित थे ।

श्री गणेश योगींद्र महाराज जी ने सुबह पूर्व द्वार की और से प्रवेश किया । कन्हा नदी के उस पार, पूर्वभाग से धर्मद्वार से होते हुए मानों गणेशधर्म संस्थापना-पूर्ति हेतु ही श्रीगणेशयोगींद्र जी ने प्रवेश किया । श्रीयोगींद्र जी की आरती उतारने देवी कन्हागंगा माता नीरांजन लिए सम्मुख आईं । उन्होंने श्रीयोगींद्र जी की आरती उतारी और उनके क्षेत्र-प्रवेश करते ही सर्वत्र वाद्य-घोष किया गया । नररूपधारी सगुणसाकार श्रीगणेश, परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश से मिलने वाला था । सभी देवताओं, द्वारपालों तथा समूचे ग्रामवासियों के प्रेम का स्वीकार करते हुए श्रीगणेशयोगींद्र महाराज जी श्री मंदिर पहुँचे । अपने उपास्य दैवत श्रीस्वानंदनाथ गणराज प्रभु का रूप निहारकर उन्हें अतीव आनंद हुआ । उन्होंने श्री गणराज के चरणकमलों पर अपना माथा रखा । आनंदाश्रुओं से अभिषेक किया । उनकी सुध-बुध खो गई । उसी प्रसन्नता की स्थिति में श्री गणराज प्रभु के शब्द सुनाई दिए, ''वत्स, कितनी प्रतीक्षा कराओगे ? कितनी देरी कर दी । अब मेरे समीप ही रहो ।'' काफी देर तक वह भावावस्था कायम थी । आवेग के कम होने पर उन्होंने श्रीचरणों में निवास हेतु प्रार्थना की तथा भगवान की पश्चिम दिशा में, बाईं और श्रीविघ्नहर के निकट ओसारे के स्थान को श्रीगणेश योगींद्र जी ने निवास हेतु निश्चित किया ।

शास्त्रों में वर्णन है कि श्री मयूरेश क्षेत्र निवास के लिए आने पर क्षेत्र सेवन हेतू द्वारयात्रा की जाए । उसका समग्र विधि-विधान श्री मौद्गल योगींद्र जी द्वारा बताया गया और श्री योगींद्र महाराज

जी ने उसका अनुसरण किया । प्रत्येक महिने के शुक्लपक्ष में चारदिन द्वारयात्रा की जाती है । चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धि हेतु द्वारयात्रा करते हैं । प्रात:समय उठकर ब्रह्मकमंडलु में स्नान करते हुए नित्यकर्म जप-संध्यादि करके श्रीगणेश पूजन के अनंतर नित्य यात्रा की जाए । तत्पश्चात पुन: स्नान करते हुए संकल्प किया जाए । फिर श्रीमयूरेशका पूजन करके द्वारयात्रा आरंभ करें । तदनंतर कन्हागंगा में स्नान कर, श्री बुद्धिपूजन करके मार्गक्रमण किया जाए । मंदिर द्वार में श्रीनग्नभैरव की पूजा कर श्रीगणेश भजन करते हुए पूर्वद्वार में सीमा के निकट द्विभुज गणपति समेत धर्माधिष्ठित माता मांजारी देवी का पूजन करें । वहाँ से पुन: पीछे आकर क्षेत्र में लौटें, स्नानोपरांत श्रीमयूरेश का पूजन करें । नित्यस्नान के साथ चार स्नान अधिक होते हैं । दूसरे दिन दक्षिण द्वार में अर्थपुरुषार्थाधिष्ठित विरजा समेत द्वार द्विभुज श्रीगणेश का पूजन करें । अन्य नित्य विधिविधान प्रथम दिवस की द्वारयात्रा के अनुसार दोहराए जाएँ । तीसरे दिन महासिद्धि का पूजन करते हुए पश्चिम द्वार में द्वार द्विभुज श्रीगणेश समेत आश्रयाशक्ति तथा कामार्थाधिष्ठा का पूजन करें । फिर चौथे दिन योगिनी पूजन, द्वारपति भीमेश्वर पूजन करते हुए उत्तर द्वारपति द्वार द्विभुज श्री गजानन की माता मुक्तादेवी समेत पूजा करें । वहाँ निकट ही ॐकार नामक सरोवर है । वहाँ स्नान करें । साधक चार दिनों तक उपोषणादि नियमयुक्त रहें । यात्रा मार्गक्रमण के समय मौन का पालन करें । अधिक तेज अथवा अति धीमी गति से न चलें । समस्थिति में मार्गक्रमण करें । समापन के अर्थात चौथे दिन श्रीमयूरेश का पूजन करें । पंचमी के दिन व्रत की समाप्ति करते हुए यात्रानुष्ठान संपन्न करें । इस प्रकार श्री गणेशयोगींद्र महाराज जी

ने द्वारयात्रा का वर्णन किया है । तत्पश्चात संकल्पपूर्वक तीर्थस्थान करें । श्रीयोगींद्रजीने पंचतीर्थ स्नान, सप्ततीर्थस्नान किया । इन सभी तीर्थस्नानों के फलस्वरूप तीर्थस्थान में रहने के लिए देहशुद्धि प्राप्त होती है तथा तपोबल वृद्धिंगत होता है । तदनंतर श्रीगणेश योगींद्रजी की नित्य दिनचर्या इस प्रकार थी – नित्यप्रति उष:काल में निद्रा त्यागकर नित्य आह्निक संपादन कर प्रात:काल में वे नित्ययात्रा करते थे । नित्ययात्रा के अनंतर श्रीमयूरेश पूजन करते थे । फिर एकाक्षर महामंत्र का जाप किया जाता था । कवच, हृदय, शीर्ष, सहस्रनाम का पाठ करते हुए मानसपूजन करते थे । प्रसंगानुकूल श्रीगीतापाठ, प्रस्थानत्रयी का पाठ किया जाता था । संध्यासमय में संध्या, जाप से विरत होकर मंदिर में देवता के सम्मुख जाकर 'शुक्लांबर धरं' कहते हुए कुट्टन कर स्तुतिसार स्तवराजादि स्तोत्रपाठ करते थे । यथाशक्ति परिक्रमा करते थे । फिर अपराध क्षमापन प्रणाम कर, श्रीनग्नभैरव को प्रणाम करते हुए नग्नभैरव स्तोत्र पाठ एवं गोपुरद्वार में बैठने के उपरांत द्वारपाल से कहकर सेवनगृह में जाते थे । दो तपों की अवधि तक श्रीगणेशयोगींद्र जी ने श्रीगणेश का विधिपूर्वक आराधन किया । आराधना के तपोबल से दीक्षात्रय सिद्धि की प्राप्ति हुई । संस्कार दीक्षात्रयसिद्धि के अभाव में गणेश ज्ञान सिद्ध नहीं होता । उसके अभाव में महाविशेष दीक्षासिद्धि प्राप्त नहीं होती । महाविशेष दीक्षा सिद्ध करने हेतु ज्ञाननिष्ठाभूत दश संस्कार कथन किए हैं । वार-मास व्रतपूजा, नित्यक्षेत्र यात्रा, श्रीमयूरेश पूजन, गणेशाग्नितर्पण, वैश्वदेव समेत आवृत्ति पूजन, जप पूजन विधि – विधानपूर्वक संपन्न करना । इस प्रकार श्रीगणेश योगींद्रजी ने श्री वैश्वदेव समेत आवृत्ति पूजन-जपपूजन आदि सभी प्रकारों को अनुष्ठान पूर्वक संपन्न किया । इस

तरह उन्हें महाविशेष दीक्षा सिद्धि की प्राप्ति हुई । तत्पश्चात उन्हें वेदविद्या महाविशेष दीक्षा सिद्धि की प्राप्ति हुई । श्रीगणेशयोगींद्र महाराज वेदविद्या संपन्न बने । संपूर्ण शास्त्रज्ञान हुआ । फिर भी चित्त शांत - संतुष्ट नहीं था । चित्त में निरंतर एक बेचैनी, तड़प का अनुभव हो रहा था । पूर्ण योगशांति-सिद्धि प्राप्ति के लिए मौद्गल सिद्धांत की प्राप्ति अत्यावश्यक थी क्योंकि वही एकमात्र समर्थ है । मौद्गल सिद्धांत प्राप्ति के लिए श्रीगणेशयोगींद्र बेचैन थे क्योंकि इस मौद्गल सिद्धांतांतर्गत श्रीगणराज प्रभु के परिपूर्ण ज्ञान-वैभव का वर्णन विद्यमान है ।

।। श्रीमद् सद्गुरू गणेशयोगींद्र पादार्पणमस्तु ।।

श्रीमद् गणेश योगींद्र महाराज सद्गुरू प्रबोधक श्री मयूरेश दर्शन

श्रीगणेश योगींद्र जी को संपूर्ण शास्त्रज्ञान प्राप्त हुआ । फिर भी उनका चित्त अशांत था । चित्तशांति हेतु मुद्गल सिद्धांत की प्राप्ति आवश्यक थी । उसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने हर संभव प्रयास किए किंतु उसकी प्राप्ति नहीं हो रही थी । इससे श्रीगणेश योगींद्र महाराज निराश हुए । ग्रंथ-प्राप्ति के सभी रास्ते बंद हुए थे । अब श्रीचरणों में प्रार्थना करने के अलावा अन्य कोई उपाय उपलब्ध नहीं है इसे जानकर उन्होंने तिलमिलाकर श्री गणराज प्रभु से प्रार्थना की, ''सबकी आशाओं की पूर्ति कराने वाले हे दयालु स्वानंदनाथ, मैंने हर प्रकार से सभी प्रयत्न किए किंतु मुझे मुद्गल पुराण की प्राप्ति नहीं हो सकी है । इससे मेरा चित्त अशांत हुआ है । लौकिक साधनों (अर्थात अन्य स्तोत्रपाठादि) से कोई लाभ नहीं है । अत: आप मुद्गल पुराण की प्राप्ति के लिए मेरा मार्गदर्शन कीजिए ।''

परमार्थ में प्रार्थना को 'महाअस्त्र' कहा गया है । ''अब आपके सिवा कौन मेरा मार्गदर्शन करेगा ?'' इस प्रकार श्रीयोगींद्र जी श्रीगणराज प्रभु की प्रार्थना कर रहे थे । आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी । उन्हीं अश्रुधाराओं से चरणाभिषेक हो रहा था । तीव्र लगन से भरी यह प्रार्थना प्रभु श्रीगणराज के हृदय को छू गई । उसके अनुसार आश्वासन युक्त निर्माल्य दूर्वाएँ मूर्ति के दक्षिण पार्श्व से गिरकर श्रीयोगींद्र जी के हाथों में आ गईं । इससे

उन्हें आनंद हुआ । उनके चित्त में एक प्रकार की प्रसन्नता छा गई । प्रभु श्री गणराज ने साक्षात दर्शन दिए तथा आलिंगन देकर वचनपूर्वक कहा, ''निराश मत होना । तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी । शीघ्र ही तुम्हें मुद्गल ग्रंथ-मुद्गल पुराण की प्राप्ति होगी । उनके अनुसार उनकी सहायता से गणेश-धर्म की स्थापना करो ।'' इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन देकर श्री गणराज प्रभु अंतर्हित हो गए । चाहे ईश्वर हो या सद्गुरु कसौटी पर तो कसते ही हैं । इन कसौटियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि सच्छिष्य का मन स्थिर हुआ है या नहीं; उसका मानसिक बल वृद्धिंगत हुआ है या नहीं अथवा यों कहना अधिक उचित होगा कि ये कसौटियाँ और कुछ नहीं बल्कि अपने भक्त के अटल निश्चय के प्रयास की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट करने का उनका प्रयत्न होती हैं । श्री गणेश योगींद्र जी को मुद्गल पुराण प्राप्त करने में जो कष्ट उठाने पड़े उनसे यही बात प्रतीत होती है । अस्तु ! स्वप्न दर्शन के पश्चात श्रीयोगींद्रजी को मुद्गल-प्राप्ति की तीव्र लगन लगी । इस बीच कुछ दिन व्यतीत हुए ।

एक दिन नित्यप्रति की तरह नित्ययात्रा, श्रीमयूरेश पूजन आदि से विरत होकर श्री गणेश योगींद्र महाराज जी प्रभु श्री गणनाथ का चिंतन करते बैठे थे । तब चिंतन के साथ उन्हें अपनी देह का दक्षिण पार्श्व रोमांचित-सा प्रतीत हुआ । निर्माल्य प्रसादी की प्राप्ति के अनंतर उन्हें प्रतीत होने लगा था कि देह का रोमांचित होना शुभशकुन ही है । उनका चित्त अलौकिक आनंद से परिपूर्ण था । वे संतुष्ट चित्त बैठे थे । इतने में एक ब्राह्मण विघ्नहर के ओसारे में आ बैठा । दोनों ने एकदुसरे को प्रणाम किया । उस ब्राह्मण के बाह्य लक्षणों से प्रतीत हो रहा था कि वह गणेशभक्त

होगा । उसकी ओर देख श्री योगींद्र जी को मन - ही - मन प्रसन्नता का स्फुरण हो रहा था । उस ब्राह्मण ने योगींद्र जी से कुछ देर के लिए अपना सामान रखने की अनुमति माँगी और यह भी कहा कि ''श्री मयूरेश दर्शन के लिए मैं आया हूँ ।'' इतना कहकर वह स्नान करने कन्हागंगा पर चला गया । श्रीयोगींद्र जी को उस ब्राह्मण-देवता के आचरण में कुछ विशेषता प्रतीत हुई । कुछ देर बाद स्नानादि को निपटाकर वे ब्राह्मण महानुभाव लौट आए और अपना देवसंभार निकालकर पूजार्चन तथा जप करने लगे । उन्होंने सिंदूर व गंधित तिलक धारण किया था । जप-पूजादि के अनंतर उन्होंने उच्छिष्ठ गंध विलेपन भी किया । उनके इस प्रकार के व्यवहार से श्री योगींद्र जी सोच में पड़ गए कि ऐसे ब्राह्मण को आज तक कैसे देखा नहीं गया ? उन्होंने उनसे पूछा किंतु ब्राह्मण-देवता ने तो मौन धारण किया था । पूजादि के पश्चात ब्राह्मण-महोदय ने एक ग्रंथ निकाला । श्री योगींद्र जी ने विनम्रता पूर्वक उनसे पूच्छा, ''अभी आपने कौन-से ग्रंथ का वाचन किया ? मैंने आजतक इसे नहीं सुना है । कुछ तो अनोखा प्रतीत हुआ ।'' श्रीयोगींद्र जी के इस प्रश्न पर उस ब्राह्मण-देवता ने आचार्य श्री योगींद्र की ओर गौरसे देखते हुए कहा, ''यह मौद्गल पुराण का प्रथम खंड है । प्रति दिन एक खंड के पठन का मेरा नियम है; अत: यात्रा में इसका एक खंड मैं अपने साथ रखता हूँ ।'' 'मुद्गल पुराण' शब्द कानौं में पड़ते ही श्री योगींद्र जी को साक्षात ब्रह्मदर्शन-सा आनंद हुआ । जिसके लिए रात दिन चिंतन कर रहे थे, छटपटा रहे थे वही वस्तु सामने देख श्री योगींद्र जी को लगा कि यह भ्रम है, स्वप्न है या आभास ? जिसे सच्ची लगन लगी हो, उसकी मुट्ठी में मनोवांछित के आते ही उसके मन में प्रेम,

आनंद उत्कट रूप में हिलोरे लेने लगता है । ऐसा न हो तो ही आश्चर्य है ! श्रीयोगींद्र जी की पूरी देह रोमांचित हुई । उन्होंने ब्राह्मण महोदय से कहा, ''तुम अत्यंत सौभाग्यशाली हो, महान हो; क्योंकि मुद्गल पुराण जैसी महामणि तुम्हारी सहायक है ।'' इसे सुन ब्राह्मण महाशय सराहनापूर्ण हास्य के साथ श्री योगींद्र जी से कहा, ''आपको आश्चर्य क्यों हुआ ? श्री गणनाथ प्रभु के परम एकनिष्ठ भक्तों के नित्य वाचन में मौद्गल पुराण होता ही है । उसी से तो श्री स्वानंदेश प्रभु गणराज की कृपा प्राप्त होती है। श्री मौद्गल योगींद्र तथा मुद्गल पुराण दोनों श्रीगणेशस्वरूप ही हैं । संपूर्ण दक्षकारिकाओं समेत श्रीमुद्गल पुराण मेरे पास विद्यमान है ।'' इसे सुन श्री योगींद्र महाराज को प्रतीत हुआ कि साक्षात प्रभु श्री गणराज ही उनपर अनुग्रह करने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण कर सगुण साकार रूप में प्रकट हुए हैं । उस ब्राह्मण-देवता के चरण पकड़कर प्रार्थनापूर्वक श्री योगींद्र जी ने कहा, ''हे आशापूरक रूप भूदेव, आप साक्षात विनायक हैं । आपके पास श्रीमुद्गल पुराण विद्यमान है इसे देखकर मुझे आनंद हुआ है । क्या आप कृपालु हो कुछ अवधि के लिए यह ग्रंथ मुझे दे सकते हैं ? उसका यथोचित लेखन कर मैं उसे आपको लौटाऊँगा । कृपा करके मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए ।'' ब्राह्मण महोदय ने बड़ी आत्मीयता से श्रीयोगींद्र जी की ओर देखते हुए कहा, ''हम दोनों ही श्री गणेशोपासक गाणपत्य हैं । मैं नित्य ही इस ग्रंथ का वाचन करता हूँ । किसी गाणपत्य को दुखी करना पाप माना जाता है । इसलिए मैं आपकी प्रार्थना का अनादर नहीं कर सकता । मैं अमलाश्रम ग्रामस्थित ढुंढीराज नामक ब्राह्मण हूँ । श्रीगणेशसेवन हेतु मैं यह यात्रा करता हूँ । यह ग्रंथ मैं आपको अवश्य दे दूँगा । लेकिन इन

दिनों चूँकि मैं यात्रा कर रहा हूँ; इसलिए मेरे पास एक ही खंड है । उसे मैं आपको सौंपता हूँ । आगामी चतुर्थी के दिन आते समय मैं दुसरा खंड लेकर आऊँगा । तब तक इसे आप लिखकर पूरा करें । ऐसे नौ खंड मैं आपको दूँगा जिन्हें आप लिख लें ।'' इस पूरी घटना से श्री योगींद्र महाराज बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने ब्राह्मण ढुंढी को प्रणाम किया । ब्राह्मण-देवता अपने ग्राम के लिए चल पड़े ।

श्रीगणनाथ प्रभु को जयजयकार करते हुए श्री योगींद्र महाराज जी ने लेखन का आरंभ किया; क्योंकि आगामी चतुर्थी के दिन ब्राह्मण ढुंढी दुसरा खंड देने वाले थे । उसके अनुसार तृतीया के दिन श्री योगींद्र जी ने प्रथम खंड का लेखन पूर्ण किया । पूर्व निर्धारित कथनानुसार ब्राह्मण ढुंढीराज मयूरक्षेत्र आ गए । नित्य प्रति की तरह जप पूजनादि विधिविधानो को संपन्न कर उन्होंने द्‌वितीय खंड देकर प्रथम खंड ले लिया । उसे भी श्री योगींद्र महाराज जी ने रात-दिन एक करते हुए लिखकर पूर्ण किया । इस तरह उनका लेखन-कार्य चल रहा था । उनकी लेखन-पूर्ति की वार्ता मानों कोई कानों तक पहुँचा रहा हो इस प्रकार अगला खंड लेखन-कार्य के लिए पहुँच जाता था । श्री योगींद्र महाराज इस प्रकार लेखन कर रहे थे मानों आनंद का निधान ही मुट्‌ठी में आ गया हो । इस कार्य में वे इतने तल्लीन हुए थे कि किसी प्रकार की आशंका मन को स्पर्श नहीं करती थी । इस तरह आठ खंड लिखकर पूर्ण हो गए । ढुंढी ब्राह्मण ने श्रीमुद्‌गल पुराण का अंतिम खंड - नौवाँ खंड - दे दिया । नवमी तक वह लिखकर पूरा हो गया । ब्राह्मण ढुंढी चतुर्थी के दिन उक्त खंड ले जाने हेतु पधारने वाले थे । तब तक पाँच दिन बाकी थे । अत: मूल ग्रंथ के आधार पर लिखित

ग्रंथ जाँच लिया जाए इस प्रकार का विचार करते हुए श्री योगींद्र महाराज जी स्वयं अपने से बात कर रहे थे कि प्रभु श्रीगणराज ने अपने 'आशासंपूरक' अर्थात 'आशाओं की पूर्ति करने वाला' इस बीरुद की रक्षा की । चिंता हरण कर चिंतामणि नाम से श्री मुद्गल पुराण प्राप्त हुआ । संतोष के साथ श्रीगणराज प्रभु की स्तुति कर श्रीयोगींद्र जी निद्राधीन हुए । उनके द्वारा प्रचुर लेखन हुआ था । दुसरे दिन दशमी को ही ब्राह्मण-ढुंढी उपस्थित हुए । उन्हें देख श्री योगींद्र आश्चर्य चकित हुए । ब्राह्मण-देवता ने लेखन-पूर्ति के बारे में पूछा । तब श्री योगींद्र महाराज जी ने कहा, ''क्या आपके नियम में कोई परिवर्तन हुआ है ? आप नित्य ही चतुर्थी के दिन आते हैं तो आज बीच ही में कैसे पधारे ? और आपको कैसे ज्ञात हुआ कि मेरा लेखन कार्य संपन्न हुआ है ? कृपया आप मुझे ठीक तरह से सब बताइए ।'' तब ढुंढी ब्राह्मण ने कहा, ''मेरे एक आप्त यहाँ रहते हैं । उनसे मिलने हम आते हैं । यदि आपका लेखन पूरा हुआ हो तो ग्रंथ दीजिए ।'' भूदेव ढुंढीराज का कथन सुन श्री योगींद्र महाराज ने कहा, ''यह कैसे हो सकता है कि इतना बड़ा अधिकारी आप्त इस क्षेत्र में निवास करता है और वह हमें ज्ञात नहीं ?'' उन्हें थोड़ा-सा आश्चर्य भी प्रतीत हुआ और कुछ संदेह भी हुआ । उन्होंने उस आप्त महोदय से मिलाने की प्रार्थना की । अब भूदेव ढुंढी विवश हुए । अब श्रीमयूरेश ने कहा, ''अब कोई उपाय नहीं । अब तो मूल रूप धारण कर श्रीयोगींद्र जी को दर्शन देकर कृतार्थ कराना होगा ।'' श्री योगींद्र जी ने श्री ढुंढीराज का हाथ पकड़ा । दोनों ने मंदिर की परिक्रमा की । दोनों ने गर्भगृह में प्रवेश किया । और तब ढुंढीराज नामक श्री मयूरेश भूदेव ने श्री योगींद्र जी का हाथ छोड़ दिया और इससे पहले कि योगींद्र जी को

कुछ ज्ञात हो, ज्योतिरूप धारण कर वे श्रीमयूरेश की मूर्ति में समा गए । इस घटना से विस्मित हो श्रीयोगींद्र महाराज काफी देर तक मात्र देखते ही रहे । होश में आने पर श्री चरणों में प्रणाम करते हुए आक्रोश करने लगे, ''हे मोरया, आपने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण करके यहाँ आकर मुझे मौद्गल पुराण प्रदान किया । आरंभ से ही मुझे कुछ अटपटा – सा प्रतीत हो रहा था । मौद्गल पुराण की धुन में मुझपर भ्रांति मोह सवार हुआ जिससे कि मैं आपको पहचान नहीं सका । आपने भी अपना स्वरूप प्रकट नहीं किया । इससे मैं अपना, अपने जीवन का धिक्कार करता हूँ ।'' भावनाओं का आवेग हलका पड़ने पर श्री योगींद्र जी ने सोचा, 'व्यर्थ ही मैं क्रुद्ध हो गया, स्वयं अपना धिक्कार किया । क्या यह मेरा कम सौभाग्य है कि साक्षात श्रीगणराज प्रभु ने श्री मौद्गल पुराण की पुस्तक मुझे दे दी ।'' इस बात को समझकर, शरणागत हो उन्होंने श्री गणराज प्रभु को प्रणाम किया और वे स्वस्थ हो श्री गणराज प्रभु की और देखते रहे । उनके मुख से श्लोक झर रहे थे । आठ श्लोकों से युक्त हार गूँथा गया । वही हार 'श्रीविघ्नेशाष्टक स्तुति' के नाम से स्तोत्रपाठ में विख्यात है ।

श्री विघ्नेशाष्टक स्तुति

ॐ यस्माद्विश्वं जातमिदं चित्रमतर्क्यं ।
यस्मिन्नानन्दघात्मनि नित्यं रमते वै ।।
यंत्रांते संयति लयं चतैददशेषं ।
तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।१।।
यस्याज्ञानाज्जन्मजरा – रोगकदंबं ।
ज्ञाते यस्मिन् नश्यति तत्सर्वमिहाशु ।
गत्वा यात्राऽयाति पुननों भवभूमि ।
तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।२।।
तिष्ठन्नन्तर्यो यमयत्येतद् जस्त्रम ।
यं कश्विन्नो वेद जनोऽप्यात्मानि सन्तं ।
सर्व यस्येद च वशे तिष्ठति विश्वं ।
तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।३।।
धमोधर्मेणेह तिरस्कार मुपैति ।
काले यस्माद्विकटाघैश्चारु चरित्रै: ।।
नाना रुपै: पाति तदा योऽवनिचिबं ।
तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।४।।
प्राणायामैर्ध्वस्त – समस्तोन्द्रियदोषा ।
रुध्वा चित्तं य हृदं पश्यंती समाधौ ।
ज्योतीयपं योगिजना मोदनिमग्ना ।
स्तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।५।।
भानुश्चन्द्र श्चोडुगणश्चैवहुताशो ।
यस्मिनैवाऽऽ भाति तडिच्चापिकदापि ।

यमदासा वै विश्वमिदं भाति समग्रं ।
तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।६।।
सत्यंज्ञानं मोदभवोचुर्निगमा यं ।
यो ब्रह्मेन्द्रदिव्य-गिरीशार्चितपादः ।
होतेऽनन्तोऽनन्तद लेचाब्रुन्निधौ य ।
स्तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।७।।
शैवा प्राहूर्य शिवमव्ये कमलेशं ।
शत्ति चै के कंच विधिं वै मतिभेदात् ।
नानाकोरे र्भातिय एकोऽ खिलशक्ति ।
स्तं विघ्नेशं संतत कालं प्रति वंदे ।।८।।

संपूर्ण विश्व-विलास के लिए काल एवं माया कारण हैं जो कि श्री स्वानंदेश के किंकर हैं । पंच जगदीश्वर भगवान ब्रह्मदेव श्री विष्णु, श्री शिवजी, श्री शक्ति तथा श्री सूर्यनारायण भी अपने-अपने कार्य उस काल के अनुरूप ही निभाते रहते हैं । काल के उल्लंघन की सामर्थ्य एकमात्र श्री विघ्नेश में ही है; इसी लिए वे स्वतंत्र शक्तियुक्त 'विनायक' कहलाते हैं । विघ्न शब्द सत्तावाचक है । सभी सत्ताओं तथा सत्तायुक्तों का प्रतिबंध करने एवं प्रतिबंध-विनाश की सामर्थ्य भी प्रभु की ही है । इसी लिए उन्हें 'विघ्नराज' कहा जाता है । अनादि, अनंत तथा अज होने के कारण उनका सर्व पूजनीयत्व तथा सर्वादि पूज्यत्व प्रसिद्ध है। वे ही जगत-कारण माया एवं काल के नियंता हैं । ऐसे भगवान विघ्नेश का स्वरूप वर्णों तथा श्लोक रूप में श्री योगींद्र महाराज जी के मुख से निःसृत हुआ । वही श्री विघ्नेशाष्टक स्तुति गणेशत्व प्रतिपादक सर्व सिद्धांत रूप एवं गूढार्थ से परिपूर्ण है ।

स्तोत्र पाठ के अनंतर श्रीगणराज प्रभु को प्रणाम कर

श्री योगींद्र जी अत्यंत आर्त स्वर में, व्याकुल हो, दु:खपूर्ण अंत:करण से श्री मोरया के सगुण दर्शन के लिए गुहार लगाने लगे । कहने लगे, ''हे करुणाकर, करुणासागर, क्या आपका प्रेमरूप सागर सुख गया है ? हे ढुंढीराज, दस बार आकर आपने मुझे ग्रंथ दिए । मैंने आपका क्या बिगाड़ा था जो आप माया के आवरण से निजरूप प्रदर्शित न कर भूदेव के रूप में पधारे थे ? (निरंतर उपासना करते हुए भक्त जब भगवान के समीप पहुँचता है तभी उस में भगवान से भी प्रेमपूर्वक शब्दों में जवाब माँगने की सामर्थ्य उत्पन्न होती है । 'कसे आहे हे देव भक्तीचे भांडणे, परा भक्तिचे ते होणे' - अर्थात भक्त और भगवान के बीच का यह झगड़ा और कुछ नहीं पराभक्ति का ही द्योतक है) । ऐ स्वानंद निवासी विघ्नराज, अब शीघ्रातिशीघ्र मुझे दर्शन दीजिए । पुराणों में वर्णन प्राप्त होता है कि आपके जैसा करुणा का सागर कोई और नहीं है; फिर मुझे दर्शन देने में देरी क्यों हो रही है ? हे भगवान, अब तो आपका विरह सहा नहीं जाता । आपके दर्शन की बेचैनी बढ़ गई है । अब तो दर्शन देने की कृपा कीजिए ?'' करुणस्वर में श्री योगींद्र महाराज जी प्रार्थना कर रहे थे । आर्त स्वर की इस प्रार्थना से श्री गणराज प्रभु का मन पिघल गया, द्रवित हुआ और वे मूर्ति से ज्योति रूप में अपने संपूर्ण वैभव समेत प्रकट हुए । मूषकारूढ़, दिव्य अष्टगंध एवं सिंदूर धारण किया हुआ, किरीट कुंडलो समेत नवरत्नों की विविध मालाएँ परिधान की हुई, पाशांकुशधारी, सिद्धि बुद्धि तथा मोद-प्रमोद सहित श्री स्वानंदेश प्रभु ने श्री योगींद्र जी को दर्शन दिए । दर्शनांत में श्री योगींद्र को जिस हर्ष का अनुभव हुआ उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ? सचमुच, भक्त और भगवान के मिलन के आनंद की अनुभूति

जिन्होंने स्वयं पाई हो, वे ही उसका यथार्थ वर्णन कर सकते हैं । हमारे जैसे ऐरे गैरे का काम नहीं है । भगवान श्री मोरया को साक्षात सम्मुख देख श्री योगींद्र जी के अष्टसात्त्विक भाव जाग्रत हुए । शरीर रोमांचित हुआ । आँखो से अविरल आनंदाश्रु बहने लगे । श्री योगींद्र जी की देहातीत स्थिति, समाधिअवस्था देख श्री मोरया ने स्वयं बाहें पसारकर उनका दृढ़ आलिंगन किया । उनके मुख पर हाथ फेरते हुए प्रभु श्री गणनाथ ने कहा, ''हे गणेशयोगींद्र, तुम मेरे सखा हो । मेरे प्रेम के लिए पूर्णतया सुयोग्य हो । तुम मेरे ही अंश हो । सगुण रूप में मौद्गल पुराण देकर मैंने ही तुम्हारी माँग की पूर्ति की । फिर भी तुम व्यर्थ आक्रोश क्यों करते हो ? हम दोनों एक होते हुए भी लौकिक दृष्टि से भिन्न हैं । इसलिए अब आप मौद्गल पुराण पर भाष्य करें । गणेश प्रस्थानत्रय अर्थात गणेशशीर्ष योग गीता पर भी भाष्य करें । श्रीमद्गणेश पुराणांतर्गत विद्यमान सहस्रनाम स्तोत्र का अपपठन हो रहा है । उसका सशास्त्र शुद्धीकरण कीजिए । पूजन के समय किसी भी सूक्त के उच्चारण से मेरा अभिषेक किया जाता है जिससे कि मुझे क्लेश होते हैं । अत: ब्रह्मणस्पतिसूक्त पर भाष्य करते हुए ब्रह्मणस्पति सूक्ताभिषेक करने के लिए सभी को प्रेरित करें । श्रीगणेशदर्शन को यथार्थ एवं यथाशास्त्र रूप में प्रकाशित करें । भारतवर्ष के गणेश क्षेत्रों का संवर्धन करें । गणेश-अद्वैत भक्ति का प्रचार-प्रसार कर पुन: श्री मयूरेश क्षेत्र लौट आएँ । मेरे आदेश से तुम अनगिनत जनों का उद्धार करोगे । इस तरह योगमार्ग की सहायता से तुम दो सौ अठ्ठाईस वर्ष मेरे निकट निवास करोगे । तत्पश्चात माघ दशमी, सोमवार के दिन यह जड़ देह निश्चल हो जाएगी तथा परंज्योति रूप में मेरे भीतर समहित हो जाओगे और तब आप के श्रीगणेश ज्ञान-

प्रसार के कार्य की शारीर स्तर पर इति हो जाएगी । तब तक यथावांछित आपके हृदय में हमारे दर्शन होते रहेंगे ।'' इस प्रकार वरदान प्रदान कर श्रीगणनाथ प्रभु अंतर्हित हो गए । इस घटना के समय जो भक्तजन उपस्थित थे उन्होंने यह संभाषण सुना । भगवान का इतना अपूर्व तेजोमय रूप देखकर उन्होंने संपूर्ण घटना के बारे में श्री योगींद्र महाराज से पृच्छा की । जब श्री योगींद्र महाराज जी ने उसका स्पष्टीकरण किया तब भक्तों का विश्वास हुआ कि श्रीयोगींद्र महाराज साक्षात मयूरेश परमात्मा ही हैं । उस दिन श्री योगींद्र महाराज जी को ध्यानसिद्धि, योगसिद्धि तथा अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हुईं । श्री गणराज प्रभु के आदेश से उन्होंने गणेशदर्शन विषयक सांप्रदायिक प्रसंग में ग्रंथरचनाएँ कीं ।

।। श्रीमद् गणेश योगींद्राचार्य पादार्पणमस्तु ।।

श्रीमद् गणेशयोगींद्र महाराज सद्गुरु सेवनाध्याय

कृपाफलाध्याय

श्री गणेशयोगींद्र महाराज जी की मुद्गल पुराण-प्राप्ति स्वयं श्रीगणराज प्रभु के कारण हुई जिन्होंने श्री ढुंढीराज ब्राह्मण के रूप में आकर मुद्गल पुराण के खंड ला दिए और श्री योगींद्र जी ने उन्हें लिख लिया । प्रस्तुत लेखन भाद्रपद शुक्ला पंचमी से आरंभ होकर माघ कृष्णा तृतीया तक चला । कुल पाँच महीने तेरह दिनों में लेखन-कार्य संपन्न किया । लेखन पूर्ति के अनंतर श्री गणराज प्रभु ने दर्शन दिए और आगामी कार्य के संबंध में आदेश दिया । स्वयं श्री योगींद्र महाराज जी ने दिखा दिया कि सर्वस्व समर्पित करते हुए जो अनन्य रूप में सद्गुरू की सेवा करता है उसे सद्गुरु-कृपा से स्वानंद की प्राप्ति होती है । स्वयं श्रीमयूरेश ने वेदांतगर्भ के रूप में मान्यता प्राप्त दो ग्रंथ-मौद्गलादेश ग्रंथ तथा मौद्गल पुराण - स्वयं उपलब्ध करा दिए । श्री योगींद्र महाराज का योगदीक्षा-संस्कार श्री मयूरेश द्वारा हुआ जिससे कि उन्होंने शांतिसुख के आनंद का अनुभव किया । वे सभी सभी सिद्धियों से युक्त, समर्थ बन गए ।

महान अवतारक विभूतियों के जीवन पर दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि बचपन से ही उनमें ज्ञान एवं गुरुत्वभाव का प्रकाश विद्यमान होता है । बचपन से ही उनका आचरण ठीक उसी प्रकार का होता है जैसा कि ज्ञानप्राप्ति के अनंतर हो जाता है । सच्चे अर्थ में जो गुरु होते हैं उनका गुरुत्व उनके बचपन में भी

उनके भीतर समाहित पाया जाता है । श्रीगणराज प्रभु के दर्शनोपरांत योगदीक्षा-साधन की परिसमाप्ति होकर श्रीमयूरेश-आदेश के अनुसार गुरुपद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात उन्होंने लोककल्याण एवं जगदुद्धार हेतु मौद्गल पुराण का विवेचन किया । मौद्गलादेश ग्रंथ पर भाष्य प्रस्तुत किया । इस कार्य के चलते श्री मौद्गल योगींद्र महाराज जी ने श्री गणेश योगींद्र महाराज जी को प्रत्यक्ष दर्शन दिए । वे उनके सम्मुख साक्षात प्रगट हुए । श्री मौद्गल महाराज को श्री योगींद्र महाराज ने साष्टांग प्रणिपात किया । उनका षोडशोपचार पूजन किया । उनके चरणों पर मस्तक रखा । श्री मुद्गल महाराज के लिए स्तुतिपरक स्तोत्रपाठ किया । उसका श्रवण कर श्री मुद्गल महाराज संतुष्ट हुए । उन्होंने श्रीगणेश योगींद्र महाराज को प्रेमपूर्वक आलिंगन दिया और कहा, ''तुम्हारे दर्शन से अतीव प्रसन्नता हुई । कलि के प्रभाव से अधर्म की वृद्धि हुई है । शास्त्रसिद्ध उपासना लुप्त हुई है । इसलिए भगवान श्री मयूरेश की आज्ञा के अनुसार मैंने श्री मोरेश्वर तथा सुशीला इस दंपती के यहाँ तुम्हारे रूप में जन्म लिया । अत: तुम स्वस्थचित्त हो श्रीमयूरेश के आदेशानुसार विलुप्त गणेशमार्ग की संस्थापना करो । गणेशधर्म के सुयोग्य प्रचार हेतु पंचदेवता तुम्हारे शिष्य बनकर तुम्हारी सहायता करेंगे । तुम मेरे पूर्णावतार हो । तुम्हारे पश्चात ऐसा अवतार पुन: नहीं होगा जो होगा वह अंशावतार ही होगा । अब तुम पूर्ण ज्ञानी योगी सिद्ध हुए हो । अब कार्य का आरंभ करो ।'' इतना कहकर श्री मुद्गल महाराज अंतर्हित हो गए । श्री योगींद्र महाराज जी ने भगवान श्री मयूरेश तथा श्री मुद्गल महाराज को प्रणाम करते हुए मुद्गल पुराण पर सुगम भाष्य लिखा आचार्य श्रीगणेश योगींद्र जी ने विभिन्न ग्रंथों पर यथोचित सरल ग्रंथरचना का आरंभ किया ।

उन्होंने मुद्गलादेश, सहस्रनाम, ब्रह्मणस्पति सूक्त आदि अनेक गूढार्थ प्रचुर ग्रंथों पर भाष्य प्रस्तुत किया । इस ग्रंथ-रचना कार्य के चलते जब भी श्री योगींद्र जी को श्री मुद्गल महाराज का स्मरण होता था; वे उन्हें दर्शन देते थे । श्रीयोगींद्र जी जब उपनिषदों पुराणों का विवेचन करते, उनके उस कथन से एकाध ग्रंथ आकार लेता था । उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'सिद्धांत लेष' नामक ग्रंथ की रचना की । ऐसे विविध ग्रंथों का लेखन कर, श्री मुद्गल जी से परीक्षण कराते हुए भगवान श्री मयूरेश प्रभु को समर्पित किए । श्रीगणेश योगींद्र महाराज जी के अवतार-कार्य की यही विशेषता है कि गणेश सिद्धांत के सांगोपांग प्रकटीकरण के कार्य की पूर्णता के समय उनके मातापिता का अंतकाल भी समीप आ गया था । दोनों ने अपने पुत्रअर्थात श्री योगींद्र महाराज का स्मरण किया । उनके द्वारा किया गया स्मरण श्री गणेशयोगींद्र महाराज को ध्यानावस्था में ज्ञात हुआ । माता-पिता को दिए एक वचनानुसार योगमार्ग की सहायता से वे उनसे मिलने आंबी ग्राम पहुँचे । अपने पुत्र को देख दोनों अपनी सुध-बुध भूल गए । समूचा जीवनालेख आँखो के सम्मुख उपस्थित हुआ और उन्हों ने स्वानंदभुवन के दर्शन कराने की प्रार्थना की । श्री योगींद्र महाराज ने कहा, ''आप दोनों पर भगवान श्रीमयूरेश की पूर्ण कृपा है जिससे कि ऐसा घटित होना संभव है ।'' इतना कहते हुए उनके स्वानंदगमन हेतु उन्होंने श्रीमयूरेश्वर की प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना के अनुसार श्री मयूरेश ने दिव्य विमान भेजा। माता-पिता दोनों ने श्री योगींद्र जी को प्रणाम किया । सबसे विदा लेकर उन्होंने स्वानंद-भुवन के लिए प्रस्थान किया । सर्वत्र 'जय जय गणराज समर्थ' का उद्घोष हुआ । माता-पिता की और्ध्वदेहिक क्रिया श्री हेरंब के हाथों कराते हुए, उसे मार्गदर्शनपरक

उपदेश देकर श्री योगींद्र महाराज श्री मयूरेश क्षेत्र लौटे ।

साधु-संतों तथा महान विभूतियों के संदर्भ में चमत्कारों का होना अवश्यंभावी होता है। सच तो यह है कि उन्हें चमत्कार कहने की अपेक्षा लीलाएँ कहना आवश्यक है । उनकी लीलाओं के पीछे लोकेषणा नहीं होती अपि तु लोककल्याण की इच्छा होती है । साधु-संतों की और देखने का साधारण जनों का दृष्टिकोण तुच्छता का ही होता है । अज्ञानी लोगों के पास तो ज्ञान का अभाव होता है । किंतु सच्चे अर्थ में जो ज्ञानी होते हैं उनसे एकाध घटना प्रकृति के नियमों के विपरीत लीलारूप में घटित हुई तो भी उसे उनका नित्याचरण, सामान्य वार्तालाप तथा उससे नि:सृत हितोपदेश साधकों के लिए उपकारक ही होता है ।

परमात्मा का वर्णन करना हो तो वह अपने आप में निर्गुण, निराकार, अव्यक्त ही होता है । वह स्वयं अपने से प्रेम नहीं करता इसलिए भक्तों के माध्यम से अपने प्रति प्रेम प्रकट करता है । प्रेम करने हेतु दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है । एक प्रेमी और दूसरा प्रेमास्पद ! उपासना करते-करते भक्त स्वयं भगवत्स्वरूप हो जाता है । फिर भगवान को प्रेम की अनुभूति प्राप्त करने के लिए किसी अन्य जीव का आधार लेकर प्रेम करना पड़ता है । उसके लिए उनके द्‌वारा प्रकृति के नियमों के विपरीत जो भी आचरण होता है वही लीला कहलाता है । अथवा उपासना करते-करते भक्त स्वयं भगवत्सरूप हो जाता है । उस की प्रेमरूप सेवा से मुक्त होने, उऋण होने हेतु भगवान किसी दूसरे जीव की सहायता से अपने भक्त की सेवा करने हेतु अवतार धारण करते हैं । यह सब जिस प्रकार घटित होता है, वह भी लीला ही कहलाता है ।

श्रीगणराज प्रभु के कथनानुसार कार्यकारी पंचदेवों का

श्रीयोगींद्र के सहायक बनने का समय निकट आया था । संकल्पित गणेश संप्रदाय के संवर्धन हेतु शिष्य-रूप में ये पंचदेवता अवतार धारण करने वाले थे । एक दिन प्रात:कालीन आह्निक, पूजापाठ जपादि के संपन्न होने के कारण श्री गणेश योगींद्र महाराज जी श्रीमयूरेश मंदिर की और नामजप करते हुए आराम से आ रहे थे । वातावरण में अतीव शांति थी । उस वातावरण का भंग करने वाली विलाप युक्त चीख - पुकार श्री योगींद्र महाराज जी के कानों में पड़ी । वे रुके और बोले, ''इतने विलापयुक्त स्वर में कौन रो रहा है ?'' उन्हे प्रतीत हुआ कि कुछ विपरीत घटित हुआ है । इसलिए उन्होंने पूछताछ की तो उन्हें ज्ञात हुआ कि क्षेत्रनिवासी किसी ब्राह्मण के दस वर्षीय पुत्र की अकाल मृत्यु हो गई है । इसी लिए उस घरसे विलापयुक्त क्रंदन की ध्वनि आ रही थी । वह क्षेत्रस्थ ब्राह्मण गणेशभक्त था और मृतक उसका इकलौता सद्गुण संपन्न पुत्र था । उसके निधन से मानों दुख का कुठाराघात ही हुआ था । श्रीयोगींद्र महाराज जी उस ब्राह्मण के घर गए और उस मृत शरीर के पास खड़े हुए । उस बालक के माता-पिता श्री योगींद्र जी के पैरों से लिपटकर शोकपूर्ण विलाप करने लगे । इस पूरी घटना से उनका मन द्रवित हुआ । हृदय में उनके प्रति करुणा उत्पन्न हुई । वे अपने साथ कमंडलु लाए थे । उन्होंने उसका पानी अभिमंत्रित कर बालक के शरीर पर छिड़क दिया । साथ बैठे लोगों को श्रीगणेश भजन करने को कहा और स्वयं ध्यानस्थ हो गए । ध्यानावस्था में श्री मुद्गल महाराज का वाक्य उन्हें ज्ञात हुआ कि 'पंचदेवेश तुम्हारी सहायता हेतु पधारेंगे ।' उसके अनुसार उक्त पुत्र गणेशसंस्कार-प्राप्त जीव होने के फलस्वरूप भगवान श्री ब्रह्माजी ने श्रीमयूरेश के आदेशानुसार अंश रुप में उसके शरीर में प्रवेश

किया । गणेश-भजन के उद्घोष में वह बालक इस तरह उठ बैठा मानों नींद से जगा हो । जागते ही उसने 'श्री गजानन' का उच्चारण किया । उसके माता-पिता अपनी सुध-बुध खो बैठे । उन्होंने और वहाँ उपस्थित लोगों ने श्री योगींद्र महाराज जी को प्रणाम किया और वे एकदुसरे से कहने लगे कि श्री योगींद्र महाराज जी सगुण रूप में अवतीर्ण साक्षात भगवान श्रीमयूरेश ही हैं । भगवान श्री ब्रह्मा जी द्वारा अंश रूप में बालक की देह में प्रविष्ट होने के कारण उसका नामकरण किया गया 'सुब्रह्मण्यं' ! जब किसी जीव की अकाल मृत्यु होती है तब उस जीव के हाथों यदि भविष्यत् में कोई विशेष कार्य संपन्न कराना हो अथवा अनेक लोग यदि उसी पर निर्भर हो याने वह उनका पालन-पोषण-कर्ता अथवा आश्रयदाता हो तो उस समय सद्गुरु महान विभूति अपनी सामर्थ्य के प्रयोग से नियति के कार्य में हस्तक्षेप कर मृत्यु को टालते हैं अथवा उसे जीवनदान देते हैं । श्री योगींद्र द्वारा दीक्षित श्री सुब्रह्मण्यं उनका प्रथम शिष्य था।

एक दिन क्षेत्रस्थ एक गरीब ब्राह्मण को अपने सम्मुख बुलाते हुए श्री योगींद्र जी ने आदेशयुक्त सुर में कहा, ''हे भूदेव, हमारी इच्छा है कि इस क्षेत्र सहित इस मंदिर का जीर्णोद्धार आपके हाथों हो । श्रीमुद्गल महाराज द्वारा द्वार यात्रार्थ स्थापित सीमाएँ इन दिनों लुप्त हो गई हैं । किंतु आपके द्वारा वे सुव्यवस्थित हो जाएँ ।'' श्री योगींद्र महाराज जी के इस एक वाक्य से, उनके आदेश से ब्राह्मण आश्चर्यचकित हुआ । उसको सूझ ही नहीं रहा था कि क्या कहा जाए । 'श्रीसद्गुरु कृपा क्या न कर सके' इस विचार से वह श्री योगींद्र जी के सम्मुख नतमस्तक हुआ और उसने कहा, ''आपकी आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं करुँगा । आप तो साक्षात

मयूरेश्वर हैं । यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि मैं आपकी आज्ञा के योग्य बना !'' इतना कहकर उसने कार्य आरंभ किया । श्री योगींद्र जी को इस बात से प्रसन्नता हुई कि उस ब्राह्मण ने बिना किसी विकल्प के श्रद्धापूर्वक श्रीगुरु की शरण में जाकर आदेश का सहर्ष स्वीकार किया । इस प्रकार श्री गुरु के आदेश का पालन करने पर सहज ही परमात्मपद की प्राप्ति होती है । श्री योगींद्र महाराज जी ने भगवती श्री लक्ष्मी और श्री गणेश का ध्यान किया । भगवती श्री लक्ष्मी अर्थात संपूर्ण ऐश्वर्य स्वरूप श्री सिद्ध लक्ष्मी महासिद्धि । उसी का कलांश है श्री विष्णुपत्नी अर्थात लक्ष्मी ! अपने पति भगवान श्रीविष्णु की आज्ञा से माता लक्ष्मी ब्राह्मण के घर प्रकट हुईं । परिणामतया वह ब्राह्मण धन-संपन्न हुआ । क्षेत्र समेत मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए सिद्ध हुआ । सर्वप्रथम उस भूदेव ने मंदिर के अहाते में नित्ययात्रा विधि हेतु शास्त्र निर्देशित रूप में यथास्थान देवताओं की स्थापना की । मौद्गल पुराण के वर्णनानुसार चतुर्द्वारों पर द्वार देवताओं की स्थापना की । पांडवेश्वर नामक ग्राम में गणेशयात्रा क्षेत्र जवळार्जुन में मूर्तियों की स्थापना की । श्री ब्रह्मकमंडलु कन्हा गंगा के उद्गम स्थान में ब्रह्माजी का अधिष्ठान फिर भगवान शिवजी तथा अंत में भगवान विष्णु की मूर्तियों की स्थापना की गई । पंचतीर्थ, सप्ततीर्थ स्थानों का निर्माण शास्त्र कथित पद्धति से किया गया । इस प्रकार श्री योगींद्र महाराज जी ने उस भूदेव के हाथों मंदिर तथा क्षेत्र का जीर्णोद्धार कराया । उक्त उदाहरण इस बात का द्योतक है कि श्रीगुरु कृपा के अनंतर क्षेत्रस्थ किसी गरीब ब्राह्मण के जीवन में क्या परिवर्तन आता है। वह ब्राह्मण अपने को धन्य, कृतार्थ मानने लगा । ब्राह्मण देवता ने इस बात की प्रतीति पा ली कि श्री

योगींद्र महाराज जी को भक्तों की इच्छाएँ ज्ञात हैं और वे उन्हें पूर्ण भी करेंगे । हम लोहे के समान हैं और श्रीयोगींद्र महाराज जी लोहे को सुवर्ण में परिवर्तित करने वाले पारस हैं इस बात को समझकर उसका हृदय भर आया।

श्री मयुरेश क्षेत्र के निकट पुणे गाँव स्थित है। वहाँ श्री शिवाजी महाराज का एक दरबारी श्रीगणेशभक्त सरदार रहता था । विवाह के कई वर्षों बाद उनके पुत्र हुआ । पुत्र जन्म की खुशी कुछ ही समय तक मनाई जा सकी क्योंकि उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका पुत्र गूँगा है । उन्होंने बहुत से उपाय किए ताकि वह बोल सके । किंतु कोई लाभ नहीं हुआ । वह एक शब्द भी नहीं बोल पाता था । इससे वे पति-पत्नी दोनों दु:खी रहने लगे, उनकी प्रसन्नता नष्ट हुई थी । फिर भी उनके द्वारा उपाय तो चल ही रहे थे । तब किसी ने सुझाया कि उपाय हेतु पुत्र को श्रीमयूरेश क्षेत्र निवासी श्री गणेश योगींद्र महाराज को दिखा दें । उनके कथनानुसार सरदार तथा उनकी भार्या-दोनों पुत्र को दिखाने श्रीमयूरेश क्षेत्र लाए । श्री योगींद्र महाराज जी मंदिर में बैठे हुए थे । तीनों वहाँ गए । पति-पत्नी ने उनके पैर पकडे और दीनता-पूर्वक प्रार्थना के स्वर में उन्होंने कहा, ''श्री स्वामीजी, आप तो सर्वज्ञ, सर्वशक्ति संपन्न, समर्थ हैं । हमारा इकलौता पुत्र जन्म से गूँगा है । हमने तरह-तरह के उपाय किए ताकि वह बोल सके । किंतु कोई लाभ नहीं हुआ । आप तो समर्थ हैं । किसी भी उपाय से उसे वाणी प्रदान करें । हम आपके श्री चरणों में आए हैं । गुरु महाराज, कुछ तो कीजिए ।'' आर्त स्वर में की गई इस प्रार्थना से श्रीगुरु का हृदय द्रवित हुआ । उन्होंने दयार्द्र दृष्टि से उस बालक की ओर देखा और उन्हें विश्वास हुआ कि संस्कारी जीव ने जन्म लिया है । उसके

गूँगेपन का-मौन का-कारण उन्हें ज्ञात हुआ । 'यह साधारण मौन नहीं है । माया मोह से भरे इस मिथ्या संसार में श्रीगुरु की प्राप्ति तक कष्ट न हों इसलिए यह गूँगापन हैं ।' इस बात को जानकर श्री योगींद्र जी ने कमंडलु का पानी श्री शारदागणेश की प्रार्थना करते हुए अभिमंत्रित कर उस बालक को पिलाया । पानी के पेट में जाते ही बालक की अवगुंठित प्रतिभा ऐसे जाग्रत हुई जैसे मेंड को हटाने पर पानी बहने लगता है । वह पद्य रूप में सद्गुरु स्तुति करने लगी । सभी के आश्चर्य की कोई सीमा न रही । श्री योगींद्र जी ने कृपादृष्टि से उसका अवलोकन किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उसका जन्म भगवान श्रीगणेश के अवतार से हुआ है । उन्होंने उसका नामकरण 'सिद्धेश्वर' किया । उस बालक ने अपने माता-पिता से कहा, ''श्री योगींद्र महाराज ही मेरे माता-पिता हैं । अब मैं उनके साथ ही रहूँगा । श्री सद्गुरु सेवार्थ ही मेरा जन्म हुआ है, इसलिए मैं यहीं रहूँगा । कर्मबंधन के फलस्वरूप मैंने आपके घर जन्म लिया । किंतु अब इसके आगे मैं गुरुगृह ही निवास करना चाहता हूँ ।'' बालक का कथन सुन माता-पिता के सिर पर मानों पहाड़ ही टूट पड़ा । श्रीगणेश योगींद्र जी ने उन्हें समझाया, ''आपके पुत्र का मन घरगृहस्थी में बहलनेवाला नहीं है । उसने तो श्रीगणेश-धर्म के प्रचार के लिए शरीर धारण किया है । आप व्यर्थ शोक न करें । श्री मयूरेश कृपा से आपके अन्य पुत्र अवश्य होगा ।'' श्रीगणेश योगींद्र महाराज जी के आश्वासक वचन सुन सरदार परिवार ने उन्हें प्रणाम किया और संतुष्ट हो सभी पुणे ग्राम लौट गए । श्री सिद्धेश्वर जी ने श्री योगींद्र जी के चरणों पर माथा टेककर संन्यास दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की । करुणासिंधु श्री योगींद्र जी ने सिद्धेश्वर की प्रार्थना का स्वीकार कर वैदिक गणेश उपासना-सिद्धि

हेतु आवश्यक संस्कार आरंभ किए । सामान्यतया साधन-क्रम के दो मार्ग हैं :- १) विहंगम मार्ग २) पिपीलिका मार्ग । पिपीलिका मार्ग में चींटी के मार्ग के समान याने क्रमशः प्रगति होती है । विहंगम अर्थात पक्षी । पक्षी जैसे एक पेड़ से उड़कर तेज गति से दुसरे पेड़ पर जाता है; उसी प्रकार की प्रगति इस मार्ग में होती है । श्री सिद्धेश्वर जन्म से ही योगी थे । अतः श्रीयोगींद्र जी ने उन्हें विहंगम मार्ग से दीक्षा प्रदान की । शुभ दिवस पर श्री सिद्धेश्वर को पंच संस्कार अर्थात १) वर्ण २) भक्ति ३) विरजा ४) सिंदूर ५) तिलक इस प्रकार पंचसंस्कारों से युक्त 'संस्कार-दीक्षा' प्रदान की । तत्पश्चात श्री योगींद्र जी ने मुद्गल संप्रदाय की वैदिक दीक्षा-विधि के अनुसार श्री सिद्धेश्वर जी के मस्तक पर हाथ रखा । समर्थ श्री सद्गुरु का कृपापूर्ण हस्त मस्तक पर रखा जाने से वे पूर्णतया भयहीन, संपूर्णतया सिद्ध हुए । पंचसंस्कारों के अनंतर षडंगादि विधि - कीलक, कवच, हृदय, संस्कार, सूक्त, शीर्ष तथा सहस्रनाम-की दीक्षा प्रदान की । उसके पुरश्चरण से शुद्ध चित्त बने श्री सिद्धेश्वर में संन्यास-ग्रहण करने की योग्यता उत्पन्न हुई है इसे देख श्रीयोगींद्र महाराज जी ने उन्हें संन्यास-दीक्षा प्रदान की और उनका नामकरण 'सिद्धेश्वर योगींद्र' किया । श्री सिद्धेश्वर योगींद्र महाराज श्री योगींद्र महाराज जी के प्रति संपूर्णतया समर्पित हुए । फलतः श्रीगुरुकृपा से उन्हें संपूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति हुई । शास्त्रों के अनुसार संन्यास धर्म हेतु सभी विधि-विधान अनिवार्य हैं । वे अटल हैं इसे दर्शाने के लिए ही श्री योगींद्र महाराज जी ने श्री सिद्धेश्वर जी के संदर्भ में ये बातें घटित करा दीं ।

यद्यपि श्री सिद्धेश्वर महाराज जी संन्यासी बने थे तथापि उन्होंने परमप्रेम तथा आदरभाव से भरकर श्री योगींद्र जी की जो

अनलस, संतोषप्रद सेवा की वह हम सभी गणेशभक्तों के लिए आदर्श मार्गपथ ही है । श्री सिद्धेश्वर महाराज श्री योगींद्र महाराज जी के जागने से पूर्व जग जाते थे, उनका ओसारा बुहारते थे, प्रात:स्मरण प्रभातियाँ आदि पद्यों को गाते थे । श्रीयोगींद्र जी के जगने पर मुखमार्जन के लिए पानी लाकर देते थे । उनका आसन तैयार करते थे । श्रीगुरुदेव के लौटने पर हाथ में मिट्टी-पानी डालकर हाथ धोने में सहायता करते थे । दंतधावन के पश्चात उनके चरणों पर मस्तक रखते थे । श्री सद्गुरु के स्नान के अनंतर उनका शरीर पोंछते थे । परिधान के लिए कौपीनादि सभी वस्त्र ला देते थे । सिंदूर धारण हेतु उनके सम्मुख सिंदूर रखते थे । रक्तचंदन घिसकर देते थे । आसनादि संपूर्ण सिद्धि के पश्चात श्री सद्गुरु की आज्ञा लेकर स्वयं अपने जप हेतु जाते थे । पुन: मंदिर लौटने पर पूजा के लिए समस्त पूजा द्रव्य, दूर्वा-शमी लाकर रखते थे । श्री गुरुदेव की पूजा-समाप्ति पर श्रीसिद्धेश्वर जी उनकी पूजा करते थे और श्री गुरुचरण तीर्थ प्राशन करते थे । उसके बाद वे भिक्षा के लिए निकलते थे । भिक्षा को मठ में लाकर, देवताओं को भोग चढ़ाकर श्रीगुरु को समर्पित करते थे । तत्पश्चात जो कुछ बचता था उसे भोजन के रूप में स्वयं ग्रहण करते थे । संध्या समय में श्री सद्गुरु की सायंसंध्या तथा सायं आरती की तैयारी करते थे । यदि श्रीसद्गुरु को कहीं बाहर जाना हो तो स्वयं उनकी पादुकाएँ निकाल कर देते थे । उनके मस्तक पर छाता धर स्वयं उनके साथ जाते थे । श्री गुरुदेव को बिना बताए कोई काम नहीं करते थे । रात्रि में स्वच्छ चादर बिछाकर सद्गुरु की शय्या तैयार रखते थे । श्री गुरुदेव के निद्रित होने पर उनके पैर दबाते थे और मुख से सहस्रनाम का उच्चारण करते थे । श्रीगुरुदेव के निद्राधीन होने

पर स्वयं सोने चले जाते थे ।

सेवा सचमुच ही कठोर कसौटी होती है । गुरुसेवा तो अग्निदिव्य ही होती है । लौकिक विद्या संपादन करने के लिए भी गुरु को प्रसन्न रखना पड़ता है । फिर आत्मविद्या-संपादन कोई मामूली काम नहीं है । परिश्रमों की परवाह किए बिना सद्गुरु को संतुष्ट रखना पड़ता है । इतने से भी काम नहीं चलता । सद्गुरु क्या चाहते हैं इसे अचूक ताड़कर उसे पूरा करना बड़ा ही कठिन होता है । श्रीसद्गुरु-सेवा ही श्री सिद्धेश्वर जी का परम लक्ष्य थी । जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति - तीनों अवस्थाओं में सिवाय सद्गुरु मूर्ति के वे किसी और चीज के विचार को मन में स्थान ही नहीं देते थे । उनकी परम श्रद्धा थी कि गुरुवाक्य ही वेदवाक्य है । श्री गुरुमूर्ति ही परमदैवत है यही अनन्य विश्वास था । गुरुगृह ही स्वर्ग है तथा सद्गुरुनाथ ही साक्षात परब्रह्म हैं ऐसी संपूर्ण प्रतीति के फलस्वरूप वे विशुद्ध भाव से अखंड गुरुसेवा में तत्पर रहते थे । यही नहीं गुरुवर की निरंतर सेवा करने की सामर्थ्य प्राप्त हो इसलिए प्रभु श्री गणराज की प्रार्थना भी करते थे । श्री सिद्धेश्वर जी की विमल सेवा तथा आत्मसात किए हुए उत्कट वैराग्य को देख श्रीयोगींद्र महाराज परम संतुष्ट हुए । श्री सिद्धेश्वर महाराज श्री योगींद्र महाराज जी के अंतरंग शिष्य बने । उन्होंने श्री योगींद्र महाराज जी के ज्योतिस्वरुप होने तक उनकी अविरल सेवा की ।

भारतवर्ष में श्री काशी क्षेत्र का विशेष महत्त्व है । ब्रह्मभूय सिद्धिपीठ के, चार दिशाओं में वर्णित धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष नामक उप स्वानंदपीठों में से श्री काशी मोक्षस्वानंदपीठ है । सभी देवताओं के भक्तों को काशी आत्मीय ही प्रतीत होती है । काशी के द्वार रक्षक देवता है श्री कालभैरव ! उनकी निजी शासनव्यवस्था होती

है । उनकी न्यायपद्धति में कोई हस्तक्षेप नहीं करता । भैरव नामक ब्राह्मण श्री काशी क्षेत्र के इस श्रीकालभैरव का पुजारी था । वह स्वभाव से बड़ा ही लोभी और स्वार्थी था । श्री भैरवेश्वर की पूजा करने हेतु आए यात्रियों से वह पैसे लेता था किंतु पूजा नहीं करता था । बाह्यत: वह अतीव सात्त्विक स्वभाव का प्रतीत होता था किंतु यथार्थ में वैसा नहीं था । देवार्चन के लिए प्राप्त पैसों का प्रयोग स्वयं अपने उपभोग हेतु करता था । मनुष्य की बुद्धि मनुष्य को दुख की गर्त में धकेलती है । वस्तुत: श्री काशी मोक्ष स्वानंदपीठ है-पाप नष्ट करने का क्षेत्र ! वहीं इस ब्राह्मण ने पापों का बाज़ार लगाया था । लोगों को तो धोखा दिया किंतु श्रीकालभैरव को कैसे ठगा जा सकता है ? वहाँ तो प्रत्येक घटना लिखी जाती है । पापाचरण से प्राप्त धन कुल-विनाश का कारण बनता है । आत्यंतिक पापाचरण अथवा आत्यंतिक पुण्यकर्मों के फल तुरंत प्राप्त होते हैं । इसी के अनुसार उक्त भैरव ब्राह्मण को भी फल प्राप्त हुआ । कई वर्षों बाद उसके एक पुत्र हुआ । लेकिन पुत्र जन्म से प्रसन्नता के स्थान पर दु:ख ही अधिक हुआ क्योंकि वह बालक जन्म से ही अंध, मूक एवं पंगु था । शक्ति रहित अवयवों वाला बस शरीर का लोंदा मात्र था । शायद वह भी कुछ कम था इसलिए जन्मत: ही उसे गलित कुष्ठ अर्थात कोढ़ ने आ घेरा था । पूरे बदन पर ज़ख्म थे । उनसे मवाद, रक्त, गंदगी बह रही थी । सर्वत्र दुर्गंध फैली थी । उस बाह्मण ने उसका नामकरण किया था - ढुंढी ! ऐसा प्रतीत होता था मानों नामानुकूल श्री भैरवेश्वर ने भैरव ब्राह्मण के सभी पापों को ढूँढ़कर एकत्रित रूप में उस बालक के शरीर में उँडेला हो । कर्मसिद्धांत के अनुसार सब कुछ भुगतना ही पड़ता है । अपने पुत्र के इस रूप को देख

भैरव ब्राह्मण बड़ा दुखी हुआ । उसे इस व्याधि से मुक्त करने हेतु उसने अनेक उपाय किए । औषधियाँ, दैवी, तांत्रिक आदि सभी प्रकार के उपाय किए । किंतु रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ । इन उपचारों में ऐंठी हुई पूरी संपत्ति भी समाप्त हुई । पापाचरण से प्राप्त संपत्ति आरंभिक दस वर्षों तक सुखदायिनी होती है किंतु उसके बाद विनाश का कारण बन समाप्त हो जाती है । वह ब्राह्मण सभी ओर से संत्रस्त हुआ । लोंदे जैसी निश्चेष्ट देह देख उसे बड़ा दुख होता था । इसी तरह उस पुत्र ने सोलहवें साल में प्रवेश किया । दुःखोपभोग से जब पाप की शक्ति क्षीण होती है तब पूर्व पुण्य का उदय निश्चय ही होता है । ठीक इसी प्रकार उस भैरव ब्राह्मण के घर कुछ लोग बच्चे को देखने के लिए आए थे । उनकी बातचीत से भैरव ब्राह्मण को पता चला कि ''महाराष्ट्र के श्रीमयूरेश क्षेत्र में कोई श्रीगणेशयोगींद्र नामक महायोगी रहते हैं जो साक्षात श्री गजानन के अवतार हैं । उन्होंने एक मृत लड़के को जीवित किया और मूक बालक को वाणी प्रदान की है ।'' तब वह भैरव ब्राह्मण अपनी भार्या और पुत्र समेत श्री योगींद्र जी के दर्शन करने तथा उपचार कराने श्री मोरेश्वर क्षेत्र पहुँचा । श्रीक्षेत्र पहुँचने पर तीनों ने श्री कऱ्हागंगा में स्नान किया और मंदिर में दर्शन के लिए आए जहाँ विघ्नहर के ओसारे में श्री योगींद्र महाराज जी बैठे थे । तीनों ने श्री योगींद्र जी को प्रणाम किया । भैरव ब्राह्मण ने अपने पुत्र की रामकहानी कथन की तथा पीड़ामुक्ति के उपाय के लिए प्रार्थना की । श्री योगींद्र महाराज जी ने उनकी ओर देखा और कहा, ''श्री भैरवेश्वर के नाम पर पैसे लेकर ईशकार्य हेतु विनियोग न कर तुमने अपने परिवार के लिए खर्च किए । इस तरह तुमने भगवान के पैसों का अपहार किया है । इसी से श्री कालभैरव की अवकृपा

से यह दुर्भाग्य खड़ा हुआ । इसी के फलस्वरूप तुम्हारे पुत्र की ऐसी दुरवस्था हुई । तुम्हारे पुत्र के शरीर की अवस्था में सुधार होने के लिए श्री भैरवेश्वर की प्रसन्नता के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है ।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने भैरवपुत्र ढुंढीराज की ओर देखा । उसमें विद्यमान विशुद्ध संस्कार को उन्होंने जाना । भैरव ब्राह्मण ने पश्चाताप दग्ध अंत:करण से श्रीयोगींद्र महाराज जी के चरणों पर मस्तक रखते हुए आर्त स्वर में पूर्वकर्म के फलों से प्राप्त पीड़ा से मुक्त करने की प्रार्थना की । उसकी प्रार्थना से श्रीयोगींद्र महाराज का अंत:करण द्रवित हुआ । उन्होंने श्रीभैरव की अवकृपा का निवारण करने हेतु सभी को श्रीनग्नभैरव मंदिर की ओर जाने के लिए कहा । प्रत्येक देवता की सत्ता द्विविध होती है । पहली अनुग्रह सत्ता और दुसरी कार्यकारी निग्रह सत्ता । जो भैरव रूप में होती है । जैसे देवताओं के मध्य प्रभु श्री गणराज की सत्ता प्रधान होती है, उसी तरह भैरव गणों में श्री नग्नभैरव की सत्ता होती है । अत: श्री कालभैरव को प्रसन्न करने हेतु सभी श्रीनग्नभैरव मंदिर के समीप चले गए ।

श्रीयोगींद्र महाराज देशिक गुरु थे । जो गुरु अपने दर्शन, स्पर्श, शब्द तथा कृपादृष्टि से शिष्य के शरीर में विद्या रूप में समावेश करते हैं तथा शिष्य की अनादि निद्रिस्त आत्मशक्ति को जगाते हुए जीव-ईश्वरैक्य करते हैं वे देशिक गुरु कहलाते हैं । यह एक बात है और दुसरी बात ऐसी है कि जब श्रीयोगींद्र जी को श्रीगणराज प्रभु के दर्शन हुए थे तब वरदान देते हुए उन्होंने कहा था कि 'तुम्हारी देह से होकर गुजरने वाली वायु से भी परिवर्तन संभव है'-इस दृष्टि से श्री योगींद्र महाराज जी जब श्री नग्नभैरव मंदिर की ओर जाने निकले तब उनके शरीर से होकर गुजरा हवा का झौका

भैरवपुत्र ढुंढी का स्पर्श कर गया । इस स्पर्श से ढुंढी के सभी दोष नष्ट हुए और उसमें पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हुआ । वह श्रीयोगींद्र जी के श्रीचरणों से लिपट गया और उसने श्रीयोगींद्र स्तुति आरंभ की । वही 'योगींद्र अष्टक' के नाम से ख्यातिप्राप्त है । गाणपत्य संप्रदाय में योगींद्र अष्टक का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

।। श्रीयोगीन्द्राष्टक ।।

।। श्री ढुंढीराज उवाच ।।

अद्राक्षमक्षीण दयानिधानमाचार्यमाद्यं गणनाथपार्श्वे
योगेन देहोत्थित दिव्यवातैर्नेत्रादिहीनं सुगुणं चकार ।।१।।
अपारकारुण्य सुधातरंगैरपांगपातैरव लोकयंतं
कठोर संसारनिदाघतप्तान मदादिकान् नौमिगुरुं गुरुणाम् ।।२।।
स्वदक्षजानुस्थित वामपादं पादोदरालंकृत योगपट्टं
अलोकये देशिकम प्रमेयमनाद्य विद्या तिमिर प्रभातम् ।।३।।
उपासते यं द्विजवर्यमुख्या निराशिषो निर्ममताधिवासा:
तं योगिनं मुद्गलरुपमाद्य मुपास्महे मोहमहार्तिशांत्यै ।।४।।
विद्रावि ताशेष तमोगणेन मुद्राविशेषेण मुहुर्निजानां
निरस्य मायां दययां विधत्ते गुरुर्महान् तत्वमसीती बोधं ।।५।।
ममाद्य योगी गणनाथ भक्त: कृपाविशेषात् कृतसंन्निधान:
एकार्णरुपामुपदिश्य विद्या माविद्यकध्वान्तमपाकरोतु ।।६।।
चारुस्मितं मुद्गल रूपमाद्यं संन्यासिनं शान्तिपदाधिरुढं
उपासते गाणपयोगिनस्तमुपात्त नादानुभव प्रमोदम् ।।७।।
गणपति निकट निवासं पटुतर विज्ञानमुद्रितकराब्जम
कंचन देशिकमाद्यं वन्दे गणेश योगीन्द्र संज्ञंतं ।।८।।

।। उपमन्युरुवाच ।।

स्तुत्या तुष्टोगणेशेन्द्र योगीतं ढुंढीराजकम्
आलिंग्यं प्रेमपूर्व तु प्राववदेशिकोत्तम: ।

।। श्री गणेश योगीन्द्राचार्या: ऊचु: ।।

वत्स ढुंढीश मे शिष्य मयुरेश कृपावशात्
मत्तुल्यो गाणपाचार्यो भविष्यति न संशय: ।।

।। समाप्तम् ।।

इस प्रकार अपने पुत्र की बीमारी, व्याधि श्रीयोगींद्र महाराज की कृपा से ठीक हुई इसी आनंद में उसने श्री योगींद्र महाराज जी का पूजन किया और वह उनका शिष्य बना । उनके साथ आए हुए लोगों ने भी गणेश संप्रदाय की दीक्षा ग्रहण की । सभी ने श्रीयोगींद्र जी के चरणों में एक महीने तक निवास किया । फिर श्री योगींद्र जी की आज्ञा लेकर सभी काशी लौट गए । श्रीविश्वेश्वर का अंशभूत बालक ढुंढी श्री योगींद्रजी की सेवा के लिए उनके चरणों में स्थिर हुआ । श्री योगींद्र जी ने सभी प्रकार की गणेश दीक्षाएँ तथा संन्यास दीक्षाएँ श्री ढुंढीराज जी को प्रदान कीं । संन्यासदीक्षा के अनंतर उनका नामकरण 'श्री ढुंढीराजेंद्र' किया ।

उत्तरी इलाके के कोसल प्रदेश स्थित अयोध्या नगरी में कुक्षिशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था । वह रामभक्त था इसलिए उसके आराध्य दैवत प्रभु रामचंद्रजी थे । वह रामभक्त था लेकिन यह नहीं जानता था कि उसके साथ श्रीगणेश की उपासना भी आवश्यक होती है । इससे अनजाने में उसके हाथों शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन हुआ । कुक्षिब्राह्मण विपुल खेतीबाड़ी वाला संपन्न किसान था । इतनी बड़ी दौलत के होते हुए भी संतानहीन होने से वह दुखी था । अंत में मन में ठानकर, बड़े निश्चयपूर्वक उसने पुत्र- प्राप्ति के लिए प्रभु रामचंद्र जी से विनय की । प्रार्थना के साथ मनौती भी मानी थी कि पुत्रप्राप्ति के अनंतर छह लाख ब्राह्मणों को भोजनदान दूँगा । उसके अनुसार ब्राह्मण कुक्षि ने अनुष्ठान आरंभ किया । अनुष्ठान तथा प्रार्थना के फलस्वरूप प्रभु रामचंद्र जी के मन में करुणा उपजी और उनकी कृपा से पुत्रप्राप्ति हो गई । प्रभु श्री रामचंद्रजी के कृपाप्रसाद से पुत्र होने के कारण

उसका नामकरण 'रामचंद्र' किया गया । पुत्रजन्म के कारण कुक्षिब्राह्मण की प्रसन्नता हिलोरे ले रही थी । प्रभु श्री रामचंद्र द्वारा इच्छापूर्ति की जाने से उसे परम संतोष हुआ था । यथासमय बालक का मौंजीबंधन हुआ । गायत्री जपानुष्ठान आरंभ हुआ । जीवन आनंद में व्यतीत हो रहा था । पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में छह लाख ब्राह्मणों को भोजनदान देने के अपने संकल्प को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए ब्राह्मण कटिबद्ध हुआ । उसके लिए असंभव क्या था ? बड़ा धनवान था । लेकिन ठीक उसी समय विघ्न उपस्थित हुआ । श्रीरामभक्ति की सिद्धि के लिए श्रीगणेशोपासना आवश्यक होती है जो कि उससे नहीं हुई । प्रमाद चाहे अज्ञानवश भी क्यों न हो, उसके परिणाम तो भुगतने ही पड़ते हैं । कुक्षि ब्राह्मण की भक्ति के कारण प्रभु श्रीरामचंद्र जी ने उस विघ्न को कुछ काल के लिए टाल दिया था । उसे पुत्रलाभ तो करा दिया किंतु कर्मबीज रूप फलों को भुगतना नहीं टल सका । पुत्रप्राप्ति रूप आनंद के उपभोग के लिए विघ्न निर्माण हो गया । उन दिनों बंगाल प्रदेश में स्वतंत्र रूप में अपनी धाक जमाने वाले किसी मुसलमान शासक का शासन प्रस्थापित था । वह अपनी प्रजा को बहुत सताता था । अपने देश के सैनिकों को लाकर उसने प्रजा को लूटा था । इस लूटपाट में श्री कुक्षि ब्राह्मण का वैभव भी लूटा गया । उस ब्राह्मण को अतीव दु:ख हुआ । यद्यपि निर्धन होने का दु:ख उसे था तथापि संकल्पपूर्ति हेतु भिक्षावृत्ति से तीर्थयात्रा करते हुए भिक्षार्जित धन से ब्राह्मणों को भोजनदान देते हुए संकल्प पूर्ण करने के प्रयास कर रहा था । मात्र दुर्भाग्य से महाधनिक व्यक्ति पर भिक्षा माँगने की नौबत आई थी । इस प्रकार तीर्थस्थानों से घूमते-घामते कुक्षि ब्राह्मण श्री

मयूरेश क्षेत्र पहुँच गया । उस समय उसके पुत्र ने सोलह वर्ष पूर्ण किए थे । क्षेत्र पहुँचने पर उन्होंने क्षेत्रस्थ लोगों को अपनी रामकहानी सुनाई । उन्होंने बताया कि संपन्न स्थिति में उनसे चौरानबे हजार ब्राह्मणों को भोजनदान दिया गया था और भिक्षार्जित द्रव्य से छह हजार को भोजन कराया था । उसकी करुण कथा सुनकर ग्रामवासियों को दुख हुआ और संकल्पूर्ति को लेकर चिंता भी हुई । तब ग्रामवासियों ने क्षेत्र-निवासी साक्षात श्रीगणेश स्वरूप श्रीयोगींद्र महाराज जी की महिमा का वर्णन किया और बताया कि उनकी शरण में जाने से उनके कृपा-प्रसाद से सभी समस्याओं का समाधान भी होगा । क्षेत्रस्थ लोगों के इस मार्गदर्शन से कुक्षिब्राह्मण आनंदित हुआ और उसे अपने पाप की संपूर्ण समाप्ति होकर महापुण्य की प्राप्ति का मानों अनुभव हुआ । वह अपनी भार्या तथा पुत्र समेत श्रीयोगींद्र महाराज जी के दर्शन करने श्रीमंदिर में आ गया । सभी ने श्री योगींद्रजी को प्रणाम किया और अपनी दुखगाथा कथन की तथा उससे मुक्त कराने के विषय में प्रार्थना की । उसे सुन श्रीयोगींद्र महाराज का अंत:करण द्रवित हुआ । उन्होंने ध्यानानुचिंतन किया । ध्यानावस्था में सभी बातें ज्ञात हुईं । बालक के संस्कारक्षम लक्षण भी स्पष्ट हुए । उन्होंने कहा, ''रामोपासना की सिद्धि हेतु श्रीगणेशोपासना अनिवार्य है । श्रीगणेश सर्व समर्थ एवं सर्वादि सर्व पूज्य है । उसका आराधन सभी के लिए अत्यावश्यक है । इस सिद्धांत नियम का उल्लंघन तुमसे हो गया जिसके फलस्वरूप रामोपासना से प्राप्त फलोपभोग में विघ्न उपस्थित हुआ । प्रभु श्रीरामचंद्र जी भी उसका निवारण नहीं कर सके । श्री गणेशोल्लंघन का बल अमोघ है । किंतु दैववशात् प्राप्त श्रीगणेश सद्गुरुकृपा उस उल्लंघन-दोष

का क्षालन कर सकती है । अज्ञानपूर्ण उल्लंघन के फलस्वरूप यह संकट उपस्थित हुआ, फिर भी तुम्हारे दृढभाव के पुण्यबल से और तुम्हारे पुत्र के सौभाग्य से इस क्षेत्र की प्राप्ति हुई और इस प्रकार विघ्न-विनाश का साधन प्राप्त हुआ ।'' आगे श्रीयोगींद्र महाराज ने उस कुक्षि ब्राह्मण से कहा, ''इस क्षेत्र में प्राप्त धन से हमारे साथ ब्राह्मणों को भोजनदान कीजिए जिससे कि तुम्हारा संकल्प पुरा हो जाएगा ।'' दूसरे दिन श्री योगींद्र महाराज जी के कथनानुसार कुक्षि ब्राह्मण ने भोजन की तैयारी की । अमृत रस से परिपूर्ण भोजन तैयार हुआ । देवताओं को भोग चढ़ाया गया । श्री योगींद्र महाराज जी ने प्रसन्न चित्त हो भोजन ग्रहण किया । वे संतुष्ट हो गए । इस प्रकार श्री योगींद्र महाराज की कृपादृष्टि से कुक्षिब्राह्मण संकल्प मनौती से मुक्त हुआ । सर्वत्र आत्यंतिक आनंद हुआ । उस दिन उस कुक्षिब्राह्मण को श्री योगींद्र महाराज की कृपा से अपने उपास्य दैवत प्रभू श्रीरामचंद्रजी के दर्शन हुए । प्रभु श्रीरामचंद्रजी ने उससे कहा, ''तुम्हारे पुत्र ने श्रेष्ठ दिव्य अंश को धारण किया है; इसी से तुम्हारे लिए परम भाग्यसिद्धि का रास्ता खुल गया । श्रीयोगींद्र महाराज के कृपाबल मात्र से ही मेरी उपासना की पूर्ण फलप्राप्ति हेतु तुम सुयोग्य सिद्ध हुए । श्रीगणेश योगींद्र जी की महिमा सभी के लिए अगम्य है । पाँच जगदीश्वर इनके चरणकमलों का सेवन इसी लिए करते हैं कि साक्षात श्रीगणेशरूप योगींद्र हमारी आत्मा परमधाम ही हैं । इनके द्वारा भोजन ग्रहण करने से तुम्हारी मनौती पूरी हुई और चराचर विश्व ने भी भोजन किया । ब्रह्मांडों को धारण करने वाले प्रभु श्रीगणेश भी पूर्ण संतुष्ट हुए और मेरी भी तुष्टि हुई है । और फिर साक्षात वैकुंठनिवासी मैं यहाँ इस स्थान पर अवतीर्ण हुआ हूँ, यही तुम्हारा

परम भाग्य है जिसकी प्राप्ति तुम्हें हुई है ।'' श्री योगींद्र महाराज ने कुक्षिब्राह्मण के पुत्र को संन्यास दीक्षा प्रदान की । गणेश एकाक्षर मंत्र का उपदेश किया और उसका आश्रमनामाभिधान 'राघवचैतन्य योगींद्र' किया ।

भारतवर्ष में इंद्रप्रस्थ क्षेत्रांतर्गत दिल्ली में औरंगजेब नामक इस्लामी शासक था । इस्लाम धर्म संदर्भ में वह अत्यंत उग्र तथा कट्टर था । आत्यंतिक धर्माभिमानी था । हिंदू-द्वेष उसकी रग-रग में समाया था । उसने हिंदुओं के मंदिर तोड़े और वहाँ मस्जिदों का निर्माण किया । चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था नष्ट करने के इरादे से बलात् उन्हें भ्रष्ट करता था । उसके इस कार्य में काल की सामर्थ्य भी सहायक सिद्ध होती थी क्योंकि कलि के दोषों से कलुषित बने भारतीयों के अंत:करण विषयलुब्ध होने के फलस्वरूप उसके षड्यंत्रों को अवकाश प्राप्त हुआ था । एकबार औरंगजेब ने गंगातट निवासी ब्राह्मणों को बंदी बनाया और इस्लाम धर्म का स्वीकार करने के लिए उन्हें विवश होना पड़े इस विचार से कष्ट देना आरंभ किया । उसकी यंत्रणाओं से थककर कुछ लोगों ने धर्मत्याग किया और म्लेंच्छ धर्म का स्वीकार किया । कुछ लोग धर्महेतु यंत्रणाएँ सहते रहे । उन ब्राह्मणों में श्रीकृष्ण नामक संपन्न ब्राह्मण था । उसने कारागृह से मुक्ति पाने के लिए कारागृह के रक्षक को गोपनीय तरीके से धन उपहार-स्वरूप दे दिया और वहाँ से भाग निकला । भागकर वह वाराणसी क्षेत्र पहुँचा । वहाँ कारागृह से ब्राह्मणों को छुड़ाने हेतु काशीराजा से मिला । काशी क्षेत्र की हालत भी दिल्ली से अलग नहीं थी । अत: काशीराजा भी क्या कर सकता था ? उसने श्रीकृष्ण ब्राह्मण को महाराष्ट्र प्रदेश के श्रीमयूरेश क्षेत्र स्थित श्री योगींद्र महाराज की

महिमा सुनाई और बताया कि उन्हीं की कृपा से ब्राह्मण-विमोचन कार्य संभव होगा । इसे सुन श्रीकृष्ण ब्राह्मण श्रीमयूरेश क्षेत्र जाने निकाला । मंजिल-पर-मंजिल तय करता हुआ वह श्रीमयूरेश क्षेत्र आ पहुँचा । श्रीक्षेत्र आने पर श्रीयोगींद्र महाराज जी के दर्शन किए । वंदन, प्रार्थना आदि के पश्चात श्रीकृष्ण ब्राह्मण ने शांतिपूर्ण तरीके से श्री योगींद्र जी के चरणों में उत्तरी हिंदुस्थान के म्लेंच्छ राजाओं द्वारा धर्मांतरित करने के प्रयास, कारागार में बंदी बनाए गए ब्राह्मणों को दी जाने वाली यंत्रणाएँ आदि सभी बातों का निवेदन किया और सभी भूदेवों को इन क्लेशों से मुक्त कराने की व्याकुल प्रार्थना की । इस करुण कथा से, आर्त प्रार्थना से श्रीयोगींद्र महाराज जी का मन द्रवित हुआ । शरणागत के लिए अभयदान महान विभूतियों तथा सद्गुरु की प्रतिज्ञा ही होती है । श्रीमहाराज जी ने श्रीकृष्ण ब्राह्मण से कहा, ''यह तो सामुदायिक कर्मदोषों के फलस्वरूप आ पड़ी आपत्ति है । काल की सामर्थ्य के सम्मुख एक व्यक्ति के पुण्यप्रभाव से उसका निवारण संभव नहीं है । किंतु तुम मेरी शरण में आए हो और शरणागत का त्याग भी असंभव है । तुम्हारे दु:खनिवारण का उपाय हम बताते हैं । ठीक उसी के अनुसार तुम्हें करना है । परम सौभाग्य से ही यह महत्पुण्ययोग तुम्हें प्राप्त हुआ है ।'' श्रीयोगींद्र महाराज जी ने उससे कहा कि, ''आप तुरंत दिल्ली-दरबार में जाइए और महाराज से कहिए की उन्हें गणेशाचार्य श्री योगींद्र महाराज जी की आज्ञा है कि कारागृह में बंदी बनाए गए ब्राह्मणों को तुरंत मुक्त किया जाए । राजा तुरंत इस आदेश का पालन करेगा । इसके संदर्भ में किसी प्रकार का विकल्प मन में न लाएँ ।'' श्रीकृष्ण ब्राह्मण श्रीयोगींद्र महाराज को प्रणाम कर उनके आदेशानुसार दिल्ली के लिए

चल पड़ा ।

श्रीकृष्ण ब्राह्मण के चले जाने पर श्रीयोगींद्र महाराज जी ध्यानस्थ हुए । उन्होंने श्री गणराज प्रभु की प्रार्थना की । श्रीगणराज प्रभु ने विघ्नपुरुष को सहायता करने का आदेश दिया । (स्वयं श्री योगींद्र महाराज श्री गणेश के सर्व समर्थ होते हुए भी सब कुछ श्री प्रभु की कृपा से ही घटित होगा । सेवक भले ही भक्तिबल से सेव्यस्वरूप हो जाए; वह भक्त के रूप में ही कायम रहता है और अपने स्वामी की महिमा में चार चाँद लगाता है । इसी को सद्गुरु का 'अकर्तात्मक योग' कहते हैं । अर्थात स्वयं करते हुए भी मैंने नहीं किया इस दृष्टि से) । वह विघ्नपुरुष म्लेंच्छ राजा के सपने में गया । उसका भयानक रूप देख राजा भयभीत हुआ । एक हाथ में उसकी दाढ़ी पकड़कर दूसरे हाथ में खड्ग लेकर विघ्नपुरुष ने कड़ककर कहा, ''तुम बड़े उन्मत्त बने हो । मैं श्रीयोगींद्र महाराज जी का कालचक्र विघ्न नामक सेवक तुम्हें बता रहा हूँ कि श्रीयोगींद्र महाराज जी का शिष्य यहाँ आएगा । वह जो कुछ बताएगा उसे चुपचाप सुनो और उसके अनुसार कार्य करो । इसी में तुम्हारी भलाई है । इस आचरण में किसी भी प्रकार का विकल्प या संदेह मत रखो । मेरे कथन में तुम्हें विश्वास हो इसलिए मैं तुम्हारी आँख निकालता हूँ । यदि तुमने आज्ञापालन नहीं किया तो तुम एकाक्ष ही रहोगे ।'' ऐसा कहकर उसकी दाहिनी आँख निकालते हुए विघ्नपुरुष अंतर्हित हो गया । म्लेंच्छ राजा की आँख खुल गई । उसने अनुभव किया कि वह एक आँख से देख सकता है लेकिन दुसरी आँख में तीव्र वेदनाएँ हो रही हैं । वह लगातार सोच रहा था कि योगींद्र कौन हैं ? अंत में उसने तय किया कि श्रीयोगींद्र जी के आदेश का

पालन किया जाए । उसके अनुसार वह श्रीयोगींद्र शिष्य श्रीकृष्ण ब्राह्मण की प्रतीक्षा करने लगा । श्रीमयूरेश क्षेत्र से निकलकर दिल्ली पहुँचने में उस श्रीकृष्ण ब्राह्मण को सात दिन लगे । उरते-सहमते, श्रीयोगींद्र महाराज का स्मरण करते हुए वह दरबार पहुँचा और उसने कहा, ''मैं, श्री योगींद्र महाराज का शिष्य हूँ । उनकी आज्ञा से मैं आपको आदेश देता हूँ कि कारागृह में जबर्दस्ती बंदी बनाए गए ब्राह्मणों को मुक्त कर दो ।'' श्रीयोगींद्र महाराज जी का नाम सुने ही उस म्लेंच्छ राजा ने कारागृह में बंदी बनाए ब्राह्मणों को मुक्त करने का आदेश दिया । आदेश देते ही उसकी नेत्रपीड़ा नष्ट हुई और उसकी दोनों आँखें पूर्ववत हो गईं । राजाने श्रीकृष्ण ब्राह्मण को प्रणाम किया और उसका यथोचित सम्मान किया । सम्मान करते समय उसने इच्छा प्रदर्शित की, ''तुम्हारे समर्थ गुरुदेव के मैं दर्शन करना चाहता हूँ ।'' अपने कथनानुसार राजा औरंगजेब अपने चुनिंदा मंत्रियों समेत श्रीकृष्ण ब्राह्मण को साथ लेकर श्रीयोगींद्र महाराज के दर्शन करने आया । श्री कन्हागंगा के उत्तरी तट पर उसने अपना पड़ाव डाला । श्रीयोगींद्र जी के निवास से पुनीत बने श्रीमोरेश्वर क्षेत्र के पूरे वातावरण से वह संतुष्ट हुआ । एक दिन नित्यप्रति की तरह श्रीयोगींद्र महाराज श्रीकन्हागंगा पर स्नान करने गए थे । स्नानादि कार्य से विरत हो वे गंगाकिनारे ध्यानस्थ हो गए । तब उस यवन राजा ने उनके दर्शन किए । वहाँ उसे अनोखी अलौकिक घटना दिखाई दी । श्रीयोगींद्र महाराज जी के स्थान पर उसे कारागृह में बंदी बनाए गए ब्राह्मण दिखाई दिए । अनंत विश्व जिसके उदर में स्थित हैं ऐसे गणेशस्वरूप श्रीयोगींद्र महाराज जी के दर्शन हुए । वह अपने को परम सौ भाग्यशाली मानने लगा । उसने श्रीयोगींद्र जी को प्रणाम

किया । प्रणामांत में श्रीयोगींद्र महाराज जी ने कहा, ''तुमने अपनी पूर्वायु में सभी विधि-विधानों का त्याग कर मनमानी करते हुए अर्थात असुरभाव से भगवान श्रीविष्णु की आराधना की । उसके फलस्वरूप तुम्हे सिंहासन की प्राप्ति हुई । विहित मार्गाचरण के अभाव में तुम्हें म्लेंच्छ धर्म की प्राप्ति हुई । तुम्हारा कुछ पूर्वपुण्य संचित था जिससे कि यहाँ आने का मौका तुम्हें प्राप्त हुआ । अब सचेत होकर स्वयं स्वधर्मानुसार आचरण कर अन्य जनों को अपने-अपने धर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता प्रदान करो । तुम्हारा उर्वरित जीवन स्वधर्मनिष्ठ बने ताकि तुम्हारी नरकप्राप्ति टल जाए और अगले जन्म में तुम क्षत्रिय के रूप में संसार में आकर परम पद की प्राप्ति कर सको ।'' इस बोध का ग्रहण कर म्लेंच्छ राजा ने श्रीयोगींद्र जी को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर दिल्ली लौट गया । सामान्य समय एवं परिवेश को किनारे करते हुए धर्मरक्षा के निमित्त प्रकट हुई उक्त श्रीयोगींद्र लीला सचमुच अद्‌वितीय है । जिसके कारण यह चरित्र घटित हुआ वह श्रीकृष्ण ब्राह्मण बड़ा विद्‌वान एवं विमलमति था । वह संस्कारक्षम प्रकाश के लिए सहायक विचार करने लगा । जन्म-मृत्यु के सांसारिक चक्र से मुक्त होने के विचारानुकूल उसने श्रीयोगींद्र महाराज जी के श्रीचरणों में अनन्य भाव से शरणागत हो विनम्रता से अपने उद्‌धार की प्रार्थना की । उसकी प्रार्थना के अनुसार श्रीयोगींद्र महाराज जी ने उसे संन्यास दीक्षा तथा गणेश दीक्षादि प्रदान कर संन्यासाश्रमांतर्गत उसका नामकरण 'कृष्णेंद्र योगींद्र' किया । अनुग्रह क्रमानुसार श्रीयोगींद्र महाराज जी के प्रथम शिष्य सुब्रमण्यम्, द्‌वितीय सिद्‌धेश्वर, तृतीय ढुंढीराज, चतुर्थ राघवेंद्र एवं पंचम श्रीकृष्ण नामक शिष्य प्रसिद्‌ध हुए । सद्‌गुरु श्रीगणेश

की कृपा-सामर्थ्य से दुर्मति सुमति हो जाता है । प्रतिकूल का संपूर्णतया विनाश हो जाता है और अंततोगत्वा साक्षात सुखस्वरूप स्वानंदपद सहज ही प्राप्त होता है ।

।। श्रीमद् गणेश योगींद्राचार्य पादार्पणमस्तु ।।

।। श्रीयोगींद्र महाराज की दिग्जय यात्रा ।।

महान विभूतियों अथवा आचार्यों के संपूर्ण जीवन की ओर दृष्टिपात करने पर दिखाई देता है कि आरंभ में उपासना, फिर उपास्यदेवता के दर्शन, ग्रंथरचना, उपास्य देवता के प्रमाणभूत पुराणग्रंथ का विवेचन, तत्पश्चात शिष्य-संप्रदाय और तदनंतर उपास्य देवता के प्रसाद की प्राप्ति । श्री योगींद्र महाराज के लिए मुद्गल-पुराण-प्राप्ति के प्रसंग के संदर्भ में देखें तो अंतिम खंड का लेखन संपन्न होने पर उन्हें श्रीगणनाथ प्रभु के दर्शन हुए । तब श्री गणराज प्रभु ने उन्हें श्रीगणेश-दर्शन-प्रकाशन तथा श्रीगणेश क्षेत्रों का संवर्धन एवं गणेशभक्ति के प्रचार-प्रसार का आदेश दिया था । इस आज्ञा के अनुसार श्री मुद्गल योगींद्र महाराज जी ने कहा था कि गणेशधर्म के समुचित, सुयोग्य प्रचार-प्रसार हेतु पंचदेवता उनके शिष्य बन उनके लिए सहायक सिद्ध होंगे । इस प्रकार पाँचों देवताओं ने क्रमश: श्री सिद्धेश्वर, श्रीढुंढीराज, श्री राघवेंद्र, श्रीकृष्णेंद्र तथा श्रीसुब्रमण्यम् नामाभिधान से उनका शिष्यत्व स्वीकार किया । श्री गणनाथ प्रभु के आदेशानुसार शुभ दिवस एवं सुमुहूर्त पर दिग्जय यात्रा आरंभ हुई । दिग्जय यात्रा हेतु अनेक शिष्य श्रीमयूरेश क्षेत्र में इकट्ठा हुए थे । श्री योगींद्र महाराज के लिए पालकी को अच्छी तरह से सजाया गया था । पालकी के ईर्दगिर्द सिंदूर वर्णीय गणेश धर्म ध्वजा लहरा रही थी । वाद्यघोष हो रहा था । श्रीमयूरेश पूजन संपन्न कर तथा श्रीमयूरेश से आज्ञा ग्रहण कर श्रीयोगींद्र महाराज दिग्जय यात्रा हेतु पालकी में विराजमान हुए । पालकी के दोनों ओर उनके प्रमुख

पाँच शिष्य थे । 'जय जय मंगलमूर्ति गजानन, जय गणेश योगींद्र गजानन' के घोष में दिग्जय यात्रा का आरंभ हुआ । मयूरेश क्षेत्र के पूर्वी हिस्से से निकल कर दिग्जय यात्रा सर्व प्रथम श्री सिद्धटेक क्षेत्र में आ गई । श्री योगींद्र महाराज ने कुछ दिनों के लिए इस क्षेत्र में निवास किया । नित्यप्रति की तरह ध्यान, भजन, पूजन, जपार्चन चल रहा था । अनुष्ठान द्वारा श्रद्धालु, निष्ठावान जिज्ञासु लोगों को गणेशोपासना विषयक जानकारी दी गई । उन्होंने शुद्ध गणेशाद्वैत मार्ग का उपदेश दिया । उन्होंने सभी पंचदेवता-उपासकों को ज्ञात करा दिया कि श्री गणराज प्रभु ही सर्वपूज्य सर्वादिपूज्य हैं । श्रीगणेश उपासना विषयक तंत्रमार्ग से संबद्ध आभासादि अनिष्ट मत विद्यमान थे । श्रीयोगींद्र महाराज ने उनका खंडन किया तथा विशुद्ध गणेशमार्ग का उपदेश दिया । तत्पश्चात यह यात्रा द्वारिका क्षेत्र की ओर चल पड़ी ।

श्री शंकराचार्य महाराज द्वारा स्थापित द्वारिका पीठ में अपने श्री सिद्धेश्वरादि पाँचों शिष्यों समेत अन्य लोगों को साथ लेकर श्री योगींद्र महाराज जी ने प्रवेश किया । तब वहाँ के पीठाधीश आचार्य ने उन्हें वादसभा में आमंत्रित किया । श्री योगींद्र महाराज अपने पाँच शिष्यों समेत वादविवाद हेतु सभा में आ बैठे । सभी को यथोचित सम्मानित किया गया । द्वारिका के पीठाधीश जी ने उनसे प्रश्न किया, ''एक ओर आप गणेशाद्वैत के संदर्भ में कथन करते समय निर्गुण ब्रह्मविषयक अद्वैत सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं । दूसरी ओर पंचायतन ब्रह्मस्वरूप का वर्णन करते समय श्रीगणेश ब्रह्म को मूल परब्रह्म बताते हुए अन्य पंचदेवों को कलांश मानते हैं । इन सभी की संगति कैसे बिठाई जा सकती है ?'' योगींद्र महाराज जी ने सिद्धेश्वर महाराज को

द्वारिकापीठाधीश के प्रश्न का उत्तर देने का आदेश दिया और कहा, ''इस प्रश्न का उत्तर देकर पीठाधीशों समेत समस्त लोगों का समाधान करो ।'' उनके आदेशानुसार श्रीसिद्धेश्वर जी ने श्री योगींद्र महाराज को प्रणाम किया और प्रश्न के समाधान के लिए वे कटिबद्ध हुए । उन्होंने प्रश्न किया, ''पीठाधीश आचार्य जी ने किस आधार को ग्रहण कर यह प्रश्न पूछा है ?'' तब पीठाधीश ने उत्तर दिया, ''श्रुतिस्मृतिपुराण ही प्रमाणभूत आधार हैं । इन्हीं के आधार पर हमने प्रश्न उपस्थित किया है ।'' तब श्रीसिद्धेश्वर महाराज ने श्रुतियों के आधार पर पीठाधीश आचार्य के प्रश्न का विवेचन किया । उन्होंने कहा, ''कैवल्यसिद्धि की प्राप्ति ब्रह्मज्ञान अर्थात निर्गुण उपासना की सहायता से करना आवश्यक है । किंतु सगुणोपासना के अभाव में निर्गुण सिद्धि संभव नहीं है इसी लिए उपासना कांड प्रस्तुत किया गया है । उपासना के अंतर्गत मात्र सगुण ब्रह्म या निर्गुण ब्रह्म उपयुक्त नहीं है; बल्कि द्विविध भाव संपन्न तथा स्वसंवेद्य प्रत्यय ब्रह्म अर्थात शक्ति, सूर्य, विष्णु, शिव तथा गणेश ये मात्र पाँच ही उपासना-योग्य वर्णित हैं । विष्णु शिवादि ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले उपनिषदों से शिवादि चारों का संयोग जिसमें होता है वही पंचम अर्थात गणेश ब्रह्म ! उन चारो भेदों की पूर्णता, समाप्ति तथा अभेद ही सच्चा अद्वैत हैं जो श्रीगणेश में पूर्णतया प्रतीत होता है । पाँचों के प्रति समान बुद्धि अद्वैत नहीं है प्रत्युत उनके यथार्थ स्वरूप ज्ञान द्वारा उन पाँचों की संयोग स्थिति का ज्ञान ही यथार्थ रूप में अद्वैत है । जिस प्रकार सगुण मूर्ति का भजन-उपासन मात्र योग्य नहीं है उसी तरह निर्गुण ब्रह्म का उपासना-व्यवहार भी संभवनीय नहीं है । अत: सगुण-निर्गुण स्वरूप का अंतर्बाह्य भजन ही उपासन है । अविद्या, विद्या तथा

स्वानंद ! तीन पादों में से शिवादि पाद का विचार एकरूप है जब कि मात्र गणेश का ही पूर्णांश सूचक है । जैसे अविद्यापाद के एक-एक भेद में शिवादि सगुण का वर्णन विद्यमान है । अविद्या शांतियुक्तत्व उससे अतीत प्रमाणित है । लेकिन पूर्णशांतिप्रदायक साक्षादात्मत्व एकमात्र श्रीगणेश का ही होने के कारण शास्त्रसिद्ध है ।'' इस प्रकार श्रुति-युक्तिपूर्ण प्रमाणों की सहायता से प्रतिपादन करते हुए श्री सिद्धेश्वर महाराज ने सिद्धतीर्थ का कथन काट दिया । श्री सिद्धेश्वर जी ने कहा, ''इस प्रकार शांतिप्रदायक स्वानंदेश श्री गजानन हमारे उपास्य दैवत हैं । हमारी निष्ठा के अनुसार स्वानंदलोक अथवा शांतिसिद्धि की प्राप्ति अनिवार्यतया होगी ही इसी श्रुतिसिद्ध तात्पर्य का कथन किया गया है । भले ही आप उसे सगुण, निर्गुण या ब्रह्म मानें ।'' तत्पश्चात श्री सिद्धेश्वर महाराज ने पंचायतन पूजारूप स्मार्तमार्ग के स्वरूप का विवरण किया । गणेशादि पंचविध अर्थात शक्ति, सूर्य, ब्रह्माजी, विष्णु तथा शिव इनके अद्वैत का स्वरूप ! युगदोषों के परिणाम स्वरूप सर्वत्र समान ब्रह्मता जिनके चित्त में रूढ होती है उनके लिए चित्तशुद्धि के द्वारा आगामी मार्गक्रमण सरल हो इस उद्देश्य से गणेशादि पाँचों के मात्र कार्यस्वरूप को ग्रहण कर उनकी समन्वित उपासना से पंचविध कारण ब्रह्म की समन्वित प्राप्ति संभव हो ऐसे एक मार्ग का उपदेश किया गया है। स्मृतिग्रंथों में इसे 'स्मार्त' की संज्ञा प्रदान की गई है । इसमें पाँचों के मंत्रजाप, पूजन, व्रतानुष्ठान तथा स्तोत्र प्रस्तुत हैं । इसी लिए यह मार्ग पंचायत-नोपास्तिमार्ग के नाम से भी प्रसिद्ध है । पंचायतन की पूजा के समान उनकी पूजा की जाए । यह निश्चित शास्त्रमार्ग है और वह पाँच प्रकारों से युक्त शास्त्रनियत है; जो देवता को मध्य स्थान में स्थापित करने का मार्ग

है और इसमें अंतर्भूत तत्त्व यही है कि सर्वसत्तावान पाँचों में से जिसकी कृपा के फलस्वरूप जो पुरुष परमार्थनिष्ठ बन जाता है वही देवता उसे जन्मजन्मांतर में प्रिय लगता है । इसी से उसकी भक्ति सुलभसिद्धि प्रदायक सिद्ध होती है । यही तात्पर्य शास्त्रसिद्ध है । अत: हे सिद्धतीर्थ यति महाराज, आप निजी मत के रूप में जिसे प्रस्तुत करते हैं उस अद्वैतमत का यथार्थ स्वरूप उपर्युक्त रूप में है । वही संप्रदाय परंपरा के अनुकूल प्राप्त है जिसे श्रीमद् शंकराचार्य भगवत्पाद योगींद्र महाराज जी ने प्रवृत्त किया है । उन्होंने गणेशादि पंचविध अद्वैतमत को भी यथाधिकार प्रवृत्त किया है । इसी लिए षण्मत संस्थापनाचार्य के रूप में वे ख्यातकीर्त हैं । इस बात पर आश्चर्य प्रतीत होता है कि उन्हीं के संप्रदाय के आचार्य होते हुए भी आप इस तात्पर्य को नहीं जानते । इस प्रकार के एकांगी, दूसरे का अपकर्ष करने वाले द्वेषमूलक मत तथा अप्रमाण कल्पनाओं को आश्रय न देने वाला श्रुतिसिद्धांत संपन्न योगींद्र प्रवृत्त गणेश मार्ग अद्वैत के परम रहस्य को संपूर्ण सिद्ध रूप में सभी के लिए सहज एवं सरलता से उपलब्ध करा देने वाला है ।'' तब सिद्धतीर्थ यति महाराज जी ने श्री योगींद्र महाराज की शरण में जाकर, साष्टांग प्रणिपात करते हुए विधियुक्त गणेशाद्वैत मार्ग की दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की । इस प्रकार श्रीमद् योगींद्र शिष्य श्रीसिद्धेश्वर योगींद्र ने साक्षात स्वानंदेशरूप योगींद्र जी के अवतार-कार्य की उपलब्धि हेतु श्री सिद्धतीर्थ के मत का निरसन किया ।

श्री योगींद्र महाराज जी की दिग्जय यात्रा मतखंडन मात्र के लिए नहीं थी; प्रत्युत संस्कृत जनों के शोधन, विपरीत प्रतिबंधनों के विनाश के लिए संस्कृत जनों को मोड़कर सिद्ध करने वाली

निग्रह-अनुग्रह सत्ता का प्रकाशन करने वाली है ।

'श्री गणराज प्रभु सर्वश्रेष्ठ हैं । उन्हीं की कृपा से इहलोक एवं परलोक में हमारा कल्याण होने वाला है, तथा श्री योगींद्र संप्रदाय इसके लिए सुयोग्य साधक है' इस प्रकार का श्रद्धान्वित, प्रेमपूर्ण भाव तत्कालीन जनों में दृष्टिगोचर होने के फलस्वरूप श्री योगींद्र महाराज ने उनके कल्याण हेतु गणेशभक्तियोग मार्ग को प्रवृत्त करने का विचार किया । उसके अनुसार उन्होंने गणेश भक्तिमार्ग का विवेचन किया । उन्होंने कहा, ''जिसके कारण जीव के सभी भाव उपास्य देवता के साथ निरंतर बँधे रहते हैं उस मार्ग को भक्तिमार्ग कहा जाता है । श्री गणेश के स्वरूप का संपूर्णतया आकलन होने के पश्चात अपना सर्वस्व उसके चरणों में अर्पित करने की निर्मल तथा अखंड प्रेमबुद्धि भक्ति कहलाती है । भक्तियोग के अंतर्गत निष्काम भाव से संपूर्णतया श्रीगणेश के ही संतोष को प्राप्त करने की इच्छा से की गई सेवा विद्यमान होती है । इसमें अहंता ममतारूप देहात्मबुद्धि नष्ट होकर सगुण साक्षात्कार की प्राप्ति होती है । अपनी देह के प्रति प्रेम अहंता की सीमा है तो स्वपुत्रविषयक प्रेम ममत्व की ! श्री गणेश के प्रति इससे भी अधिक प्रेम अखंड रूप में विद्यमान होना ही भक्ति है । सामान्यतया विशेष प्रिय चीज के प्रति मन में नौ प्रकार के मनोव्यापार चलते हैं :- १) श्रवण २) कीर्तन ३) स्मरण ४) पादसेवन ५) अर्चन ६) वंदन ७) दास्य ८) सख्य ९) आत्मनिवेदन ! अत: चित्तशांतिप्रदायक भक्तियोग नौ प्रकार का है । ये सभी प्रकार हमारे अंत:करण से संबद्ध हैं। उसके उपसाधक चार बाह्य प्रकार हैं :- १) कायिक २) वाचिक ३) मानसिक ४) सांसर्गिक । सभी को इन चारों प्रकारों को सिद्ध करना पड़ता है । श्रीगणेश के अलावा अन्य किसी की

प्रीति की इच्छा न करना और न ही किसी के क्रोध की पर्वा करना इसी प्रकार का आचरण श्रीगणेश भक्त का होना चाहिए । इसी प्रकार के प्रसादगुण से परिपूर्ण अभंगों आदि का भजन किया जाए जिससे कि श्रीगणेश विषयक परमश्रेष्ठ प्रभाव एवं आत्यंतिक प्रेम की अभिव्यक्ति हो सकेगी । भक्तियोग दीक्षा के दो प्रकार हैं । एक साक्षात स्वानंदेशस्फूर्ति प्रदायक एवं दुसरी गणेशस्फूर्ति प्रदायक ! स्वानंदेशस्फूर्ति प्रदान करने वाली वैदिक पद्धति की, एकार्ण तथा षडर्ण मंत्रजाप समेत वैदिक पद्धति का अनुसरण करने वाली, वैराग्य की ओर अग्रसर होने वाली होती है; तो दूसरी गणेशस्फूर्ति प्रदान करने वाली मोक्ष की इच्छा रखने वाली किंतु अल्प वैराग्य वाली, कुछ हद तक कनिष्ठ पद्धति की और वल्लेभेशादि मंत्रों के विधिविधान से प्राप्त होने वाली है ।'' चूँकि किसी-न-किसी वैदिक दीक्षा के अभाव में वैदिक भक्तियोग सिद्ध नहीं होता, इसलिए श्रीयोगींद्र महाराज जी ने तत्कालीन अनियमित आचरण करने वाले श्रद्धालु जनों को एकसूत्र में पिरोने हेतु दोनों प्रकार की दीक्षाओं से युक्त भक्तियोग प्रवृत्त किया । शाश्वत सुखस्वरूप एक ब्रह्म विद्यमान है । ब्रह्मभाव-सिद्धि ही सभी का परम लक्ष्य है । किंतु ब्रह्मज्ञानसिद्धि के अभाव में उसकी प्राप्ति संभव नहीं है । किसी - न - किसी मार्ग के अवलंब के बिना उसकी सिद्धि असंभव है और ब्रह्म तो अपने आप में निरालंब है । उसकी प्राप्ति हेतु यथोचित मार्ग अवश्य विद्यमान होगा । इसी लिए श्रुतियों ने रूपकल्पना का निर्माण किया । इस प्रकार सभी सत्ताओं से युक्त एकमात्र गणेशी सत्ता ही संपूर्ण सिद्धि प्रदायक है जो गणेशोपासना मार्ग के आश्रय से ही प्राप्त की जाती है । उक्त गणेशोपासना समाश्रयहेतु क्रमसाधक एक-एकांश सत्ताबोधक पंच उपासना मार्ग

निश्चित किए गए हैं । श्रीयोगींद्र महाराज ने इसी परम सिद्धांत का प्रकाशन किया।

इस प्रकार श्रीगणनाथ प्रभु का परब्रह्म परमात्मस्वरूप स्पष्ट करते हुए दिग्जय यात्रा मथुरा में आ गई । मथुरा क्षेत्र वैष्णव क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है । मथुरास्थित वैष्णवों ने श्रीमद् योगींद्र महाराज का गणेशसिद्धांत श्रवण कर अपना वैष्णव सिद्धांत उनके सम्मुख प्रस्तुत किया । ''जगत्पालक धर्मात्मा भगवान विष्णु महानारायण ही एकमात्र परब्रह्मधाम है । गणेश शिवादि उनके कलांश हैं । गणेश तो भगवान श्रीकृष्ण का अंश और गिरिजापुत्र है । अत: उससे संबंधित आपका गणेश सिद्धांत स्वीकार्य नहीं है ।'' भगवान श्रीविष्णु के अंश से प्रबुद्ध सच्छिष्य श्रीकृष्णेंद्र योगी इन वैष्णव मतानुयायियों की भ्रमरूप बुद्धि का निराकरण करते हुए वैष्णवबोध के लिए सक्षम है इस प्रकार विचार कर श्रीमद्योगींद्र महाराज ने श्रीकृष्णेंद्र योगी को उन वैष्णवों के संशयभ्रम – निराकरण का आदेश दिया । श्रीकृष्णेंद्र योगी जी ने कहा, ''विश्व का आधार अव्यक्त ब्रह्मपरमात्मा ॐकार रूप प्रमाणित हुआ है। 'अ'कार भगवान विष्णु, 'उ'कार भगवान शिव, 'म'कार सूर्यनारायण तथा अर्द्धमात्रा शक्ति के एकांश से स्तवित है । इन चारों का समन्वित रूप जो प्रणव उसकी गणेश के पूर्णांश रूप में स्तुति की जाती है । विश्वविलासांतर्गत विष्णु, शिव, शक्ति तथा सूर्य का गुणकार्य भिन्न प्रकार से प्रतीत होता है; किंतु गणेश के संदर्भ में वैसा नहीं है । उसके आत्मभूत साक्षित्व से वह ज्ञात होता है। वैष्णव ग्रंथों में विष्णुपंचायतन में उसके अंग रूप में विद्यमान गणेश के भगवान कृष्ण का अंश होने के विषय में वर्णन प्राप्त होता है । किंतु वह सगुणादि विष्णु का अंश न होकर आत्मापूर्ण तुरीय गणेश का अंश

है इस बात को समझना आवश्यक है । पार्थसारथी उपनिषदों में भगवान श्रीकृष्ण पार्थ से कहते हैं, ''गजवक्त्रादि चिह्नधारी जो कृष्णविघ्नेश स्वरूप है वही मेरा मूल आत्मरूप योगिध्येय ब्रह्मस्वरूप है । मेरे द्वारा निर्मित ब्रह्मादिकों के विघ्ननाशन हेतु किए गए मेरे स्वात्मध्यान से वह स्वेच्छया उत्पन्न हुआ । मेरे लिए भी वह पूजनीय है । इस तत्त्व को जानना आवश्यक है कि उस परमात्मा श्रीगणेश की उपासना करते हुए मेरी ही उपासना करना अनिवार्य है । अन्यथा सबकुछ निष्फल है । श्रीविष्णु के आत्मतत्त्व कृष्णविघ्नेश ने अपने अंश की योजना गिरिजासुत में करने के फलस्वरूप उसकी गजमुखत्व सिद्धि निश्चित हुई है ।'' श्री कृष्णेंद्र योगी आगे कहते हैं, ''हमारे उपास्य दैवत श्री स्वानंद गणेश बिंबी हैं जब कि उनके एकांश का बिंब भगवान विष्णु हैं । उनके बिंब अर्थात श्रीगणेश का प्रतिबिंब जो गिरिजासुत, उसे हमारा प्रतिपाद्य समझना अर्थात प्रतिबिंब को ही बिंबी समझना है जो कि मतिभ्रम का लक्षण है । अत: सतर्क हो भ्रम का त्याग कर यथार्थ तत्त्व को जान लीजिए । वैष्णव भक्ति प्रथम द्वारभूत है । क्यों कि ॐकार में सर्वप्रथम पहचाना जाने वाला, सहज ज्ञात होने वाला 'अ'कार विष्णुरूप है । साधकों में ज्ञानमूलक जिज्ञासा जाग्रत करने वाला सत्त्वगुण उसका अधिष्ठान है तथा पुरुषार्थ सिद्धि के मूल साधन अर्थात धर्मपुरुषार्थ के स्वामी भी भगवान विष्णु हैं । पार्थसारथी नामक उपनिषद में वैष्णवोपासना के तीन प्रकार बताए हैं । श्रीगणेशाराधन समेत भगवान विष्णु का आराधन करना प्रसाद उपासना है, विष्णु को केंद्र में रखकर श्री गणेश सहित क्रमश: शिवादि चारों का पूजन करना पंचार्चन उपासना है । इसमें भी श्री गणेश की मंत्रजप रूप उपासना अनिवार्यतया होती ही है और तीसरा

प्रकार है मात्र विष्णु पूजन ! सिर्फ निर्विघ्नता हेतु आरंभ में गणेशपूजन करना विशुद्ध उपासना है । विष्णुस्वरूप ध्येय तथा उसके आत्मस्वरूप कृष्णविघ्नेश ज्ञेय समझने के भाव से वैष्णव कल्प मार्ग का आश्रय कर वैष्णव उपासना करना परमश्रेष्ठ प्रसादनिष्ठा मानी जाती है । इसी निष्ठा के फलस्वरूप वैष्णव ब्रह्म सिद्धि प्राप्त होती है । विश्व का कारण निर्गुण ब्रह्म ही विष्णुस्वरूप है इस प्रकार से अनिश्चित स्वरूप जानकर पंचायतन पूजा करना मध्यम निष्ठा है । यह ब्रह्मभाव प्रदायक है । श्रीविष्णुविषयक शुद्ध पूजन निष्ठा कनिष्ठ मानी जाती है । वह ब्रह्मस्फूर्ति प्रदायक नहीं है प्रत्युत मात्र कामनापूरक है जिसके फलस्वरूप उपासना योग में इसका स्वीकार नहीं किया जाता । जाने-अनजाने में श्रीगणेश पूजन का त्याग होने अथवा वैष्णव एकनिष्ठ भ्रम से गणेशपूजन का त्याग करने से विष्णु-कोप होता है । यह मार्ग वेदनिंद्य एवं तांत्रिक ही सिद्ध होता है ।'' अत: वैष्णव भक्तजनों से श्री श्रीकृष्ण योगींद्र स्वामी कहते हैं । कि श्री गणेशविषयक परंपरा सम्मत गणेशी दीक्षा तथा वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कीजिए । श्रीकृष्णेंद्र योगी वैष्णवों से कहते हैं, ''यद्यपि आप वैष्णव मार्गक कहलाते हैं, तथापि संपूर्ण वैष्णव सिद्धांत आपको ज्ञात नहीं है । आराधन - विधि विधान भी सम्यक् रूप का नहीं है और गणेशोपासना रहित होने के कारण गणेशोपासनपूर्वक वैष्णव प्रसाद मार्ग को अपनाइए । उसके लिए श्रीयोगींद्र चरणों का आश्रय ग्रहण कीजिए । तभी यथोक्त विष्णु ब्रह्ममहिमा तथा वैष्णव सायुज्यादि सिद्धि की प्राप्ति होगी । इसके अभाव में नहीं ।'' श्रीकृष्णेंद्र जी का संपूर्ण भाषण श्रवण कर उपस्थित तांत्रिक वैष्णव निरुत्तर हुए । किंतु सभी को यह विशुद्ध मार्ग - पद्धति पसंद नहीं आई । उनमें जो भी कोई पूर्वसंस्कार

संपन्न थे वे योगींद्र मठानुयायी बन गए । उर्वरित जन अंत:करण विक्षुब्ध हो जाने से भाग गए । बिना किसी प्रतिबंध के ऐहिक तथा पारमार्थिक इच्छाओं की परिपूर्ति, विघ्नविनाशन तथा कामनापूरकता श्रीगणेशजी के कारण ही है । इसी लिए गणेशमार्ग ही आश्रय लेने योग्य है ।

तत्पश्चात श्रीयोगींद्र जी की दिग्जय यात्रा श्रीक्षेत्र काशी पहुँची । उनके वहाँ पहुँचने पर वहाँ का भैरव नामक द्विजश्रेष्ठ श्री योगींद्र संप्रदाय का आश्रय कर पूर्णत: गाणपत्य हो गया । उसके मूलतया शिवोपासक एवं कालभैरव पूजक होने तथा उन्हीं की कृपा से फलस्वरूप पूर्ण गाणपतत्व प्रमाणित होने के कारण आत्मदेवता शिव, इष्टदेवता कालभैरव तथा मतदेवता श्रीगणेश इस प्रकार उसका मार्गाचरण आरंभ हुआ । इस प्रकार श्री योगींद्र महाराज ने उत्तरी भारत के क्षेत्रों के शैव, शाक्त, सौर, स्मार्त विचारधाराओं के आक्षेपों का खंडन कर उनके अधिकारानुरूप उनके सिद्धांतों का मंडन करते हुए योगींद्र मठानुशासन की परंपरा में उनके एकदेशीय गाणपत विचारधारा वाले सच्छिष्य श्रीढुंढीराज योगींद्र महाराज के द्वारा उनकी यथोचित स्थापना एवं संपादन कराया । अद्वैत सिद्धांत परिपोषक गणेशादि षड्विध उपासनाओं को यथोचित पद्धति से बताने के फलस्वरूप कुछ दीक्षित, कुछ भक्तियोगी, कुछ अदीक्षित इस प्रकार के लोग श्रीमठ संप्रदाय में समाहित हुए । विजय यात्रा में सम्मिलित हुए । किसी की किसी भी प्रकार की योग्यता हो या न हो सभी के हृदय पर एक सिद्धांत अंकित हुआ कि साक्षात परब्रह्मस्वरूप ब्रह्मणस्पति गणेश ही एकमात्र सर्वाद्य एवं सभी के लिए उपास्य है । तदनंतर योगींद्र महाराज की दिग्जययात्रा दक्षिण भारत पहुँची ।

दक्षिण भारत में शिवकांची नामक महाक्षेत्र में श्रीयोगींद्र महाराज ने निवास किया । वहाँ शैवमत का प्रभाव था । श्रीमद् योगींद्र महाराज के प्रभाव से वहाँ के निवासी महाशैव श्री अप्पय्या दीक्षित 'श्री' के दर्शन हेतु पधारे । महाराज को प्रणाम कर उन्होंने अपना पूर्ववृत्त कथन किया । उन्होंने कहा, ''महाराज, मैं जन्म से ही अत्यंत मूढ़ तथा अज्ञानी था । अनाड़ी, पूर्ण अव्यावहारिक था । उम्र के सोलहवें वर्ष तक मेरी यही स्थिति थी । स्वभाव से भी ऊठल्लू होने के कारण ग्रामवासियों के ढोर-डंगर चराने का काम करता था । मेरे इस आचरण से घर में मेरे ज्येष्ठ बंधु एवं भौजाई परेशान हो गए । अशिष्ट भाषण से मेरा अपमान करने लगे । एक दिन मुझे अपने ऊपर ही लज्जा आई और मैं संतप्त और निराश हो गाँव के बाहर दिखाई दिए एक श्रीगणेश मंदिर में चला गया । मंदिर में भगवान श्रीगणेश के चरणों पर मस्तक रख प्रार्थनापूर्वक उनसे कहा, ''हे भगवान श्रीगणेश, न मेरे पास ज्ञान है न विद्या ! फिर जीवित रहकर मैं क्या करूँ ? या तो मुझे इनमें से कुछ दे दीजिए या मेरे प्राणों का हरण कीजिए ।'' इस प्रकार सुबह से दुसरे दिन के सूर्योदय तक निरंतर प्रार्थना चल रही थी, फिर भी किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया के लक्षण नहीं उभर रहे थे । अंत में निराशा से झुँझलाकर श्रीचरणों पर सिर पटककर प्राणार्पण करने के निश्चय से तैयारियाँ आरंभ कीं । मेरे इस निश्चय से श्रीगणराज प्रभु को मुझपर तरस आया और वे मेरे सम्मुख साक्षात प्रकट हुए । मेरा आलिंगन कर उन्होंने कहा, ''इस प्रकार व्यर्थ ही जान क्यों दे रहे हो ? तुम भगवान शिव के कृपापात्र हो । उनके हाथ के परशु का अंश तुझमें है । पूर्वकर्मों के दोष से आज तक वह आच्छादित था । किंतु आज अत्यंत निग्रहपूर्वक मेरा कृपाश्रय प्राप्त

होने से वह प्रतिबंध नष्ट हुआ है । वह अव्यक्त शैवतेज प्रकट होकर तुम परम शैव दार्शनिक बनोगे । इसमें किसी भी प्रकार का संदेह मत रखो ।'' इतना कहकर स्वयं भगवान श्रीगणेश जी ने मेरी जिह्वा पर बीजलेखन किया और मैं संपूर्ण ज्ञानसंपन्न हुआ । ''तुम महान शैव हो अत: तुम मेरी आराधना समेत श्रीशिव की उपासना करो । भगवान श्रीशंकर तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे । शैव मार्ग में तुम पूज्यतम बनोगे । कुछ काल पश्चात गणेश सिद्धांत स्थापना हेतु मेरा शिष्य श्री गणेश योगींद्र दक्षिण में आ जाएगा । तब उससे गणेशदीक्षा प्राप्त होने पर ही तुम्हें शैवत्व सिद्धि प्राप्त होगी ।'' इतना कहकर श्रीगणराज प्रभु के अंतर्हित होने के बाद उनकी आज्ञा के अनुसार गणेशाराधन समेत शिवाराधन करना और तदनुसार शैव मार्ग की प्रस्थापना करने का मेरा कार्य चल रहा है । गणेशदीक्षाश्रय के बिना इसकी पूर्ति संभव नहीं है इसलिए आपके आगमन की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ । आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ ।'' इसप्रकार अपनी अंतर्बाह्य स्थिति का निवेदन करते हुए अप्पय्या दीक्षित जी ने श्रीयोगींद्र महाराज के चरणों में प्रार्थना की कि वे शैवत्वसिद्धिकर, शैवत्वसिद्धि की पूर्ति हेतु वैदिक गणेशदीक्षा प्रदान कर उन्हें पूर्ण गाणपत बनाएँ । श्री अप्पय्या दीक्षित की प्रार्थना से श्रीयोगींद्र महाराज प्रसन्न हुए । साक्षात शिवजी के कृपाबल से शैवत्व सिद्धि की परिपूर्ति होकर गणेश प्राप्ति संभव हुई इसे जानकर उन्होंने अप्पय्या दीक्षित जी को पंचसंस्कार युक्त गणेशी दीक्षा तथा वल्लभेश मंत्रदीक्षा प्रदान कर शैव-गणेश बनाया । श्रीयोगींद्र महाराज ने ब्रह्मसूत्रों का पूर्णार्थतात्पर्य कथन करने वाला सिद्धांतलेश नामक ग्रंथ श्री अप्पय्या दीक्षित को दिया और उसपर भाष्य करते हुए उसे प्रकाशित करने का आदेश

दिया । उस आज्ञा के अनुसार श्री अप्पय्या दीक्षित ने ग्रंथलेखन किया तथा अपना शेष जीवन ग्रंथ की सहायता से शैवों के सम्मुख गाणपत मार्ग की महिमा विशद करने में व्यतीत किया । इस प्रकार शिवकांची महाक्षेत्र में कुछ समय के लिए निवास करते हुए वहाँ के षड्विध गणेशसंस्थापन-कार्य को संपन्न करके श्रीमद् योगींद्र महाराज श्रीश्वेत विघ्नेश तीर्थस्थान पधारे । यहाँ पहुँचने पर उन्होंने श्रीश्वेत विघ्नेश्वर का पूजन किया । पूजा समाप्ति पर श्री योगींद्र महाराज के सम्मुख श्रीमुद्गल योगींद्र महाराज जी के शिष्य श्री हेरंड स्वामी प्रकट हुए । श्रीगणेश योगींद्र महाराज ने उन्हें प्रणाम किया । श्री हेरंड स्वामी महाराज ने कहा, ''आपके गणेश-संस्थापन-कार्य से अतीव प्रसन्नता हुई । यह कार्य दीर्घकाल तक चलेगा । कलिकाल के प्रभाव से समय-समय पर मलिनता आएगी; किंतु उसके आते ही कोई-न-कोई अंशधर बिभूतियाँ पात्रभूत जीवों में प्रविष्ट हो जाएँगी । उन जीवों के माध्यम से ग्रंथादि साधनों की पूर्ति कराते हुए उनके द्वारा आपके स्थापित श्रीमौद्गल संप्रदाय की सब प्रकार से रक्षा हम अवश्य करेंगे । इसके बारे में किसी प्रकार का संदेह न हो । यह तो हमारे सद्गुरू श्री मुद्गल महाराज का ही आदेश है ।'' इतना कहकर वे अंतर्हित हुए । इस क्षेत्र में कुछ काल तक निवास कर दक्षिण की दिग्जय यात्रा सुचारु रूप से संपन्न होने पर श्रीयोगींद्र महाराज भूस्वानंदक्षेत्र मोरगाँव के लिए चल पड़े । रास्ते में स्थान-स्थान पर श्रीगणेश तीर्थस्थान देखकर, वहाँ कुछ दिनों के लिए निवास करके अपने अलौकिक बोध से उन्होंने सुयोग्य व्यक्तियों का उद्धार करने का कार्य संपन्न किया । इस प्रकार वे क्रमश: उड्डपी नामक ग्राम पहुँचे । श्रीयोगींद्र महाराज ने वहाँ वास्तव्य किया ।

उड्डपी ग्राम मध्वाचार्य मतवादियों का प्रमुख पीठस्थान था जहाँ सभी वैष्णव उपासक एवं तंत्रमार्ग के आचरणकर्ता विद्यमान थे । उस समय माध्वपीठ पर जो अधिकारी संन्यासी थे, वे श्री योगींद्र महाराज के साथ वादविवाद करने पधारे । गणेशद्वैतादि सिद्धांत अपने आपमें अद्वैतपूर्ण होने के कारण उसका खंडन करते हुए अपने द्वैत मत की प्रतिष्ठापना करने के दुरभिमान से भरकर वे वादविवाद के लिए आए थे । उन्होंने कहा, ''परमात्मा विष्णु ही एकमात्र परमेश्वर हैं तथा अन्य सभी अथवा महेश्वरादि सभी जीव प्रमाणित होते हैं । वे सर्वथैव अल्पज्ञ हैं तथा परेमश विष्णु की भक्ति करना ही उनका नित्य कर्तव्य है । परमात्म स्वरूप से जीव का अभेद असंभव है । अत: श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रवृत्त मायावाद स्वरूप अद्वैत मत संपूर्णतया वेदविरोधी है । उसी मत का आश्रय कर आप श्रीगणेश के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते हैं जो कि संपूर्ण रूप में अनुचित है । भगवान विष्णु के कृपाप्रसाद से उन्हें विघ्नाधिपति का स्थान मिला है और वे सर्वपूज्य तथा सर्वादिपूज्य माने जाते हैं । श्रीविष्णु की कृपा से श्रेष्ठ पद पर आसीन गणेश श्रेष्ठ कैसे सिद्ध हो सकते हैं ? उनका ब्रह्मत्व भी वेदप्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता । अत: भगवान विष्णु के स्थान पर आप श्री गणेश की भक्ति करते हैं जो कि अनुचित है ।''

इस प्रकार का विद्वेषमूलक दुर्भाषण सुन श्रीयोगींद्र महाराज के सच्छिष्य श्रीराघवचैतन्य योगी ने श्रीसद्गुरु को प्रणाम करते हुए प्रार्थना की, ''इस भाषण में यत्किंचित भी समझदारी दिखाई नहीं देती । अत: जैसे को तैसा इस न्याय से मैं ही इस कथन की ख़बर लेता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए ।'' श्रीयोगींद्र महाराज जी ने उन्हें नेत्रसंकेत से ही अनुज्ञा प्रदान की । तब श्रीराघवचैतन्य योगींद्र

महाराज ने माध्वपीठेश से कहा, ''अबतक आपने जो कुछ कहा उसका प्रमाणभूतत्व प्रस्तुत करें । ये सभी बातें आपको कैसे ज्ञात हुईं ?'' इस पर माध्वपीठाधीश ने कहा, ''हमारे आचार्य जो वासुदेव के अंश से अवतीर्ण हुए थे; उनके लिखे सिद्धांत ग्रंथों के प्रमाण पर मेरा कथन आधारित है ।'' उनके इस कथन पर श्रीराघवेंद्र योगी ने कहा, ''बड़ी बुद्धिमानी का दम भरते हुए आप जो भाषण कर रहे हैं वह समझदारी का नहीं है और न ही वादविवाद में टिकने वाला है । आपके कथन को चार्वाक, बौद्ध आदि मतों की तरह निंद्य तथा त्याज्य समझना चाहिए । वेदादि चौदह विद्यास्थान प्रमाणभूत सिद्ध हो चुके हैं । इन्हीं समग्र विद्यास्थानों को शास्त्र कहा जाता है । सभी श्रेष्ठतम ऋषियों ने उन्हीं के आश्रय से धर्मबोध का अनुशासन किया है । इन प्रमाणों के आधार पर जो कहा जा सकता है उसी को कहना चाहिए । वही सभी के लिए स्वीकरणीय होगा । इसी प्रकार यदि आपके सिद्धांत के विषय में अन्य प्रमाण प्रस्तुत करना संभव होगा तो अवश्य कीजिए ।'' माध्वपीठाधीश इसका कोई ठोस उत्तर प्रस्तुत करने में अक्षम सिद्ध हुए । उल्टे उन्होंने श्रीराघवचैतन्य योगी जी से प्रश्न किया, ''क्या आपके शंकराद्वैत मत के समर्थन में कोई प्रमाण विद्यमान है ? यदि है तो उसे प्रस्तुत कीजिए ।'' इस प्रकार का प्रतिप्रश्न सुन राघवेंद्राचार्य महाराज अत्यंत प्रसन्न हुए । क्योंकि शास्त्रसिद्ध विवेचन एवं सिद्धांत मत की प्रमाणसिद्ध प्रस्तुति के लिए उन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ जिससे कि उनके मतों का खंडन भी सरलता से हो सकता था । इसके अनुसार उन्होंने सिद्धांत-व्यवस्था का विवेचन आरंभ किया, ''परमात्मा की नि:श्वास से प्रकाशित श्रुतिविद्या अपौरुषेय है । वह वेदविद्या ऋग्वेद, यजुर्वेद,

सामवेद तथा अथर्ववेद ऐसे चार प्रकारों में विराजमान है तथा अनेक शाखाभेदों से युक्त है । इसमें प्रमुख दो भाग हैं - एक परवेद तथा दूसरा अपरवेद । संहिता तथा ब्राह्मण रूप वेद का अंश अपरवेद कहलाता है तथा उपनिषद का अंश परवेद कहलाता है । चारों वेदों की शाखाएँ हैं । उस प्रत्येक शाखा का एक उपनिषद है । उनमें से कुछ उपनिषद ज्ञानोपासना बोधक तथा कुछ उपनिषद कर्मकांड बोधक हैं । उनका विवेचन करने वाले इतिहास, पुराणों को ज्ञानस्मृति कहा जाता है । ये स्मृतियाँ मात्र ही सत्यार्थ-बोधक एवं प्रमाणभूत मानी जाती हैं । श्रीमद् शंकराचार्य ने इसी मार्ग को प्रवृत्त किया है । श्रीगणेश, श्रीविष्णु, भगवान शिव, सूर्यनारायण आदि उपास्य देवता ब्रह्मरूप में वर्णित हैं तथा परब्रह्म-प्राप्ति हेतु क्रमश: अवश्यमेव उपास्य माने गए हैं । सभी श्रुतियों में इसका उपदेश है । इसी के अनुकूल युगाचार्य श्रीशंकराचार्य ने षण्मतमार्ग प्रस्तुत किया है ।'' अंत में श्रीराघवेंद्राचार्य महाराज ने कहा, ''हे यतीश्वर, वेदशास्त्रसम्मत मार्ग का आश्रय कर तथा द्वेषबुद्धि को त्यागकर आप विष्णुभक्ति साधन को अपनाएँ । इसी में आपका कल्याण है । आपका मध्वमार्ग भले ही किसी के भी द्वारा प्रवर्तित किया गया हो, वेदसिद्धांत के प्रतिकूल होने के कारण सर्वथैव निंद्य ही है । आप निश्चित रूप में समझ लें कि आपकी हठधर्मी वृत्ति तथा वेदविपरीत मार्ग के समर्थन के फलस्वरूप अंततोगत्वा नरकप्राप्ति के रूप में आपको दुर्गति की ही प्राप्ति होने वाली है । इतना होते हुए भी यदि आप अपने सत्यार्थ के विषय में कुछ दिव्य करना चाहते हैं तो यदि आपकी गुरुभक्ति एवं सामर्थ्य असाधारण हो तो अपने मताचार्यों, मधुवसंत अथवा वायुदेवता को आमंत्रित कीजिए । उनके मतों का खंडन हम करेंगे । या तो इसी

दिव्य को आप यहाँ प्रदर्शित करें या हमारी सत्यनिष्ठा के भाव की सामर्थ्य देखिए । अथवा भगवान कैलासनाथ की प्रार्थना करते हुए अद्‌वैत संप्रदाय प्रवर्तक श्री शंकराचार्य को आमंत्रित कीजिए ।'' इस पर माध्वमुनि ने कहा, ''सर्वथैव असंभव, अघटित को संभव बनाने की बात आप कर रहे हैं । कम-से-कम अपनी सामर्थ्य का प्रमाण तो प्रदर्शित करें ।'' इसके अनुसार श्रीमद् गणेश योगींद्र महाराज जी ने शिवादि देवताओं का प्रार्थनापूर्वक स्मरण किया । सभी देवता वहाँ अवतीर्ण हुए । उन्होंने त्रिवार गर्जना कर बताया कि 'गणेशाद्‌वैतादि षड्‌विध अद्‌वैत संप्रदाय स्वरूप मार्ग ही परमकल्याणप्रद एवं वेद प्रमाणसिद्‌ध है । इसी लिए सभी के द्‌वारा आश्रयणीय है ।' श्रीयोगींद्र जी का गौरव कर सभी देवता अंतर्हित हुए । सभी ने इस चमत्कार को प्रत्यक्ष देखा । सभी का विश्वास हुआ और वे सभी लोग योगींद्र जी की शरण में आ गए तथा वैदिक मार्ग का आश्रय कर पूर्णतया कृतकार्य हो गए । सभी ओर से कुंठित होने तथा साक्षात दर्शन करने के परिणाम स्वरूप माध्वपीठाधीश संन्यासी ने पश्चातापदग्ध हो श्री योगींद्र महाराज के सम्मुख आत्मसमर्पण किया । श्रीयोगींद्र महाराज ने उसे गणेशाद्‌वैत मार्ग में दीक्षित कराते हुए श्रीमद्‌योगींद्र मठानुयायी बनाया । उसके साथ आए हुए सभी लोग संशुद्‌ध हुए । वैदिक गाणपत मार्गानुयायी बने । संपूर्ण कर्नाटक प्रदेश वैदिक प्रतिष्ठासंपन्न हुआ ।

दक्षिण प्रदेश में सर्वत्र दिग्जयकार्य यथोचित रूप में संपन्न करने के अनंतर, श्रीमन्मुद्‌गल योगींद्र महाराज के परम प्रियतम शिष्य, जिनकी जीवनावधि लाखों महाकल्पों की नियत हुई है तथा प्रत्येक कल्प में विश्वकार्य संचालन हेतु पंचेश्वरों को जो संपूर्ण ज्ञान एवं गणेशोपासना प्रदान कर सत्तासामर्थ संपादन करने का आयोजन

करते हैं, जो अमलाश्रम क्षेत्रांतर्गत नामलगाँव में निवास करते हैं ऐसे परम गाणपताचार्य सार्वभौम श्रीमद्भृशुंडी महाराज के दर्शन करने, दिग्जय यात्रा का वृत्त कथन करने एवं उनसे कृपाशीर्वाद प्राप्ति हेतु श्रीयोगींद्र महाराज नामलगाँव क्षेत्र पधारे । वहाँ पहुँचने पर श्रीमद् योगींद्राचार्य जी ने अपने संपूर्ण शिष्यगणों समेत नारदा, कर्पूरा तथा बिंदुसुरा नामक नदियों के संगम पर स्थित श्रीतुरीयातीर्थ में स्नान किया । मंदिर में जाकर आशापूरक के दर्शन किए तथा उनकी महाभिषेक सहित विशेष पूजा की । श्री आशापूरक की प्रार्थना करते हुए कहा, ''हे आशापूरक गणराज प्रभु, मौद्गल सिद्धांत प्रदान करने हेतु द्विजवेशधारण कर आप स्वयं पधारे किंतु आपने साक्षात दर्शन नहीं दिए । आपने मेरे साथ ऐसा छल क्यों किया ? मेरी संपूर्णतया असंभवनीय आशा की पूर्ति आपने की । मुझे अनुभव हुआ कि आप ही एकमात्र आशापूरक हैं । आपकी कृपासामर्थ्य से आज तक जो भी घटित हुआ उसका आपके श्रीचरणों में निवेदन करने संप्रति मैं यहाँ आया हूँ ।'' श्रीयोगींद्र महाराज की इस उत्कंट प्रार्थना से श्री आशापूरक अतीव संतुष्ट हुए । प्रसन्न हुए । तुरंत दशभुज दिव्यरूप में प्रकट होकर उन्होंने श्रीयोगींद्र महाराज को साक्षात दर्शन दिए । श्रीयोगींद्र जी श्रीचरणों से लिपट गए और उन्होंने अपना संपूर्ण वृत्त कथन किया । श्रीआशापूरक जी ने अत्यंत प्रसन्नता से उन्हें उठाते हुए अपने हृदय से लगाया और गौरवपूर्ण शब्दों में उन्हें आश्वस्त कराया । उन्होंने कहा, ''हे भक्त शिरोमणि, तुमने जो भी किया सब प्रकार से यथोचित ही है । भक्तियोग से परिपूर्ण वैदिक गणेशोपासना का सर्वोत्तम फल प्रदान करने वाले मौद्गल सिद्धांत के प्रचार-प्रसार का कार्य जो इन दिनों अपेक्षित है, उसी को तुम अपना रहे हो । उसके लिए एकमात्र तुम्हारा ही

अधिकार नियत हुआ है । तुमने भक्तियोगरूप लक्षणों से संपन्न विशिष्ट भक्तियोग को ही प्रवृत्त किया है और आगे चलकर भी निश्चित रूप में करोगे ही !'' इस प्रकार गौरवपूर्ण वाक्यों से श्रीयोगींद्र जी को अनुमोदन, कृपाशीर्वाद एवं आलिंगन देते हुए श्री आशापूरक गणराज प्रभु मूर्ति में अंतर्हित हो गए । वहाँ से श्री योगींद्र महाराज श्री भ्रुशुंडी महाराज के स्थान पर गए जहाँ श्री भ्रुशुंडी योगींद्रजी की स्मृति में एक शिवलिंग स्थानचिह्न विदयमान है । श्री योगींद्र महाराज ने उनकी पूजा की । स्तोत्रपाठादि को संपन्न कर जब वे ध्यानावस्था में स्थित थे तब वहाँ श्री भ्रुशुंडी महाराज अकस्मात दिव्य रूप में अवतीर्ण हुए । श्रीयोगींद्र महाराज ने उन्हें प्रणाम किया । उन्हें ऊपर उठाकर श्रीभ्रुशुंडी महाराज ने अपने हृदय से लगाया तथा उनका आत्यंतिक गौरव किया । उन्होंने कहा, ''समूचे गणेश गुरुपंचक में एकमात्र तुम्हीं परमश्रेष्ठ एवं धन्य हो ! मेरे सद्गुरु श्रीमनमुद्गल योगींद्र महाराज श्रीस्वानंदनाथ प्रभु के आदेश से तुम्हारे रूप में अवतीर्ण हुए हैं । तुमसे मिलकर मैं परम सौभाग्य का अनुभव कर रहा हूँ । श्रीगणराज प्रभु के लिए अत्यंत प्रियतर श्रीगणेशभक्ति प्रकाशन का कार्य भूमिस्वानंद क्षेत्र के इस गणेश गुरुस्थान से प्राप्त होता है । इसी के लिए महासिद्धिपीठ की स्थापना हुई । इसी पीठस्थान से गणेशभक्ती मार्ग प्रकाशित एवं प्रवृत्त हुआ है । इसी महत्तम कार्य की यथोचित पूर्णता तुमने सिद्ध की है । यही तुम्हारा परम धन्यपदभूतत्व है । अब यहाँ अमलाश्रम क्षेत्र में तुम्हारा आगमन हुआ है तो कुछ काल के लिए यहीं रहकर नित्य गणेशचर्चा के आयोजन से मुझे प्रसन्नता प्राप्त करा दो । श्रीमौद्गल भाष्यादि की जो रचना तुमने की है उसका अवलोकन भी संभव होगा ।'' इतना कहकर श्रीभ्रुशुंडी महाराज वहीं

अंतर्हित हुए । श्रीभ्रुशुंडी महाराज के आदेशानुसार श्रीयोगींद्र महाराज ने कुछ काल तक वहाँ वास्तव्य किया । निवास के अंत में श्रीयोगींद्र महाराज ने श्रीआशापूरक गणेश तथा श्रीसद्गुरुनाथ श्रीभ्रुशुंडी योगींद्र महाराज से आशीर्वादपूर्वक प्रयाण की अनुमति प्रदान करने हेतु प्रार्थना की । उनका आशीर्वाद प्राप्त होने के उपरांत उन्होंने वहाँ से प्रयाण किया । श्रीमद् मुद्गल अपने शिष्य श्रीभ्रुशुंडी समेत उन्हें विदा कराने त्रिवेणी संगम तक आ गए । वहाँ से उन्होंने अनुज्ञा प्रदान की उस समय दोनों की आंतरिक स्थिति बड़ी विचित्र हुई । वियोग के फलस्वरूप विषण्णता छा गई ।

अमलाश्रम क्षेत्र से निकलकर श्रीयोगींद्र महाराज राक्षसभुवन नामक विज्ञान-गणेश-क्षेत्र में आ पहुँचे । इस क्षेत्र के विज्ञान गणेश की मूर्ति की स्थापना महागाणेश दत्तात्रेय द्वारा हुई है । मंदिर के समीप ही श्रीयोगींद्र महाराज ने अपने निवास की व्यवस्था की । यह भाग सिद्धाश्रम नाम से जाना जाता है । विज्ञान क्षेत्र से लेकर गंगामसला तक का प्रदेश गणेश-महीमा-संपन्न होने के फलस्वरूप कामस्वानंद नामक गाणेश गुरुपीठ कहलता है । उसके निकट ही विज्ञान शंकर का स्थान है । इस क्षेत्र में श्री योगींद्र महाराज का वास्तव्य एक महिने के लिए था । इस कालावधि में श्री दत्तात्रेय तथा श्रीविज्ञानगणेश शंकर दोनों ने प्रकट होकर श्रीयोगींद्र जी को साक्षात दर्शन प्रदान किए तथा उनका गौरव किया । विज्ञान गणेश क्षेत्र के अनंतर श्रीयोगींद्र महाराज सिद्धटेक क्षेत्र आ पहुँचे । वहाँ से आगे बढ़ते हुए वे मोरेश्वर महाक्षेत्र आ पहुँचे । इस प्रकार बारह वर्षों तक दिग्जय यात्रा संपन्न कर, सार्वभौम गाणेश जगद्गुरु श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य महाराज अपने हजारों शिष्यों समेत मोरेश्वर क्षेत्र लौट आए । कुल तीन हजार गाणेश भक्त एक ही समय

मयूरेश क्षेत्र में उपस्थित हुए । सभी के एक ही समय एक साथ ब्रह्मकमंडलु गंगा में स्नान करने से समूचा गंगाजल रक्तिमवर्ण का हो जाता था । सभी प्रकार का अमंगल नष्ट करने वाले श्रीभूस्वानंद क्षेत्र में ऐसा प्रतीत हुआ मानों श्रीयोगींद्र जी के रूप में मंगलकर्ता सूर्यनारायण ही उदित हुए हैं। उनके आगमन पर मयूरक्षेत्र निवासी सभी लोग सद्गुरु का स्वागत करने के लिए तैयार हुए । उनकी अगवानी करते हुए, उनकी जयजयकार कर बड़े उत्साह के साथ सद्गुरुनाथ को पुण्यक्षेत्र ले आए । समारोहपूर्वक श्रीमयूरेश मंदिर में जाकर श्रीयोगींद्र महाराज ने श्रीमयूरेश के चरणों पर माथा रखा । चारों ओर लगातार जयजयकार हो रही थी । समारोह के संपन्न होने पर श्रीमत्सद्गुरुनाथ सिंहासनारूढ़ हो गए और सभी शिष्यों ने क्रमश: उनके चरणों पर मस्तक रख दिया और प्रार्थना की । मंदिर के सभामंडप में श्रीमयूरेशमूर्ति के सम्मुख श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य महाराज दिव्य सिंहासन पर दक्षिणाभिमुख आसनस्थ हुए हैं । ईर्दगिर्द सिद्धेश्वरादि ज्येष्ठ शिष्य विराजमान हैं । उनकी परली तरफ तीन हजार शिष्यसमुदाय यथोचित स्थान पर बैठा है । आसपास क्षेत्रस्थ अन्य स्त्री-पुरुष बैठे हैं - इस प्रकार का वह दृश्य बड़ा ही मनोज्ञ था । इस तरह पूरा कार्यक्रम संपन्न होने के अनंतर श्रीमद् गणेश योगींद्राचार्य महाराज स्वस्थान में शांतिपूर्वक रहे । गणेशसद्गुरु की सेवा में सभी अपना समग्र काल व्यतीत करते थे । कुछ दिनों बाद श्रीयोगींद्र महाराज श्रीमयूरेश पूजन हेतु माध्याह्न समय में मंदिर गए । यथाविधि पूजा-प्रार्थना संपन्न कर ध्यानावस्थित हो गए । तभी अचानक मूर्ति में से प्रभु श्री गणराज प्रकट हुए । श्री योगींद्र महाराज को दर्शन देते हुए, उनके मस्तक पर वरदहस्त रखकर वे प्रसन्नता से बोले, ''भक्तश्रेष्ठ योगींद्र,

संपूर्णतया कृतार्थ बने तुम अब किस बात की अपेक्षा कर रहे हो? पूजा, स्तुति प्रार्थनादि परिश्रम अब क्यों कर रहे हो ? आँखें खोलो । मैं साक्षात दिव्य रूप में प्रकट हो तुम्हें दर्शन दे रहा हूँ– नहीं नहीं ! तुम्हारे दर्शन के लिए प्यासा मैं तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ ।'' श्रुतिसंपुट में इन शब्दों के ग्रहण करते ही श्रीयोगींद्र महाराज सँभल गए । आँखें खोलकर देखा तो साक्षात तेजोमय स्वानंदनाथ श्रीमयूरेश प्रभु सम्मुख खड़े हैं । श्रीयोगींद्र महाराज ने तुरंत उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणों से लिपटकर प्रेमपूर्वक अश्रुजल से नहलाया; फिर वे हाथ जोड़ खड़े हुए । और प्रार्थना करने लगे । उन्होंने कहा, ''हे प्रभु मयूरेश, आपकी आज्ञा के अनुसार, आपके कृपाबल की सहायता से दिग्जय यात्रा के निमित्त संपूर्ण भारतवर्ष में मैंने भ्रमण किया और आपके आदेशानुकूल सबकुछ यथावत संपन्न किया । उसी का सेवावृत्त मैं आपके श्रीचरणों में प्रस्तुत कर रहा हूँ । सानुग्रह चित्त से आप उस का स्वीकार करें !'' इतना कहकर श्रीयोगींद्र महाराज ने श्रीमयूरेश के चरणों पर मस्तक रखा । परमदयालु श्रीमयूरेश प्रभु ने उन्हें उपर उठाकर बड़े प्रेम से हृदय से लगाया और अपनी अनुग्रहपूर्ण वाणी से कहा, ''भक्तश्रेष्ठ, तुम धन्य हो ! मैं अतीव संतुष्ट हुआ हूँ । अब मुझे छोड़कर कहीं भी मत जाओ । तुम्हारा वियोग मुझसे बिलकुल सहा नहीं जाता ।'' इतना कहकर पुन: अपना अभयदानरूप वरदहस्त श्रीयोगींद्र जी के मस्तक पर रख श्रीमयूरेश प्रभु अपनी मूर्ति में अंतर्हित हुए ।

एक दिन रात्रि के दो प्रहरों के अनंतर संपूर्णतया शांत एवं एकांत समय पर श्रीमुद्गल महाराज प्रकट हुए जहाँ श्रीयोगींद्र महाराज आसनस्थ हुए थे । उन्हें देखते ही अत्यंत प्रसन्नचित्त हो श्रीयोगींद्र

महाराज तुरंत अपने आसन से उठे और उन्हें साष्टांग प्रणिपात किया । अपने आसन पर बिठाया । पूजादि से उनका स्वागत कर पादसंवाहन करते हुए उनसे प्रार्थना करने लगे, ''हे भगवान सद्गुरुनाथ, आपके इस आकस्मिक अनुग्रह से मैं संपूर्णतया कृतार्थ अनुभव कर रहा हूँ । आपको विदित ही है कि आपकी आज्ञानुसार मैंने अपना संपूर्ण कर्तव्य निभाया और उसे श्रीमयूरेश के श्रीचरणों में निवेदन कर समर्पित भी किया । अब यही प्रार्थना है कि इसी प्रकार से आप अखंड रूप में मुझे कृपानुग्रहित करते रहें ।''

श्रीयोगींद्र जी के कथन से श्रीमन्मुद्गल योगींद्र जी को संतोषपूर्ण अत्यंत आनंद हुआ । परम संतुष्टचित्त से उन्हें आलिंगन कर उन्होंने कहा, ''वत्स योगींद्र, तुम सर्वथा धन्य हो । तुम्हारे सभी कार्य मुझे अतीव प्रिय लगे । मेरे लिए विशेष प्रिय योगपूर्ण गणेशी भक्तियोग तुमने अत्यंत सरलता से सर्वत्र प्रवृत्त किया है । अर्थात पूर्वपुण्य संस्करी सुयोग्य व्यक्तियों को ही वह प्राप्त होने वाला है । इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय तुमने जो कार्य किया है वह कलियुग की समाप्ति तक अत्यंत उपयुक्त साबित होने वाला है । अब कलियुग में प्रत्यक्ष दिव्य अवतार तथा प्रत्यक्ष कार्य करने वाली विभूतियाँ कदापि अवतीर्ण नहीं होंगी । तुम्हारे अवतरणकार्य को अंतिम ही समझना चाहिए । जो भी अधिकारी व्यक्ति यहाँ जन्म लेंगे उनके उद्धार तथा गणेशमार्ग पुष्टि हेतु तुमने जो गणेश भक्तियोग मार्ग प्रवृत्त किया है; वह नित्य ही अत्यंत श्रेष्ठ, पूजनीय प्रमाणित होगा । तुम यहाँ दीर्घ कालतक शांति पूर्वक रहो । प्रभु के अनुशासन से ही तुम्हें सुदीर्घ आयु प्राप्त हुई है । तुम्हें एक और अन्य कार्य करना है । संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथों को सुलभ गेय प्राकृत भाषा में परिणत करना चाहिए । वह कार्य अब तुम्हें करना

है । वेदोपनिषत्पुराणों आदि से ब्राह्मणस्पत स्वरूप सार्वभौम सत्तार्थलक्षण गणेश-महिमा का गान हुआ है जिसका अवलंबन सरलता से किया जा सकता है । अत: सभी के लिए पूर्णशांतियोग प्रदायक ज्ञान का लाभ प्राप्त करा देने वाला कार्य तुम करो ।'' श्रीयोगींद्र महाराज ने श्रीमुद्गल महाराज के आदेश को ''तथास्तु'' कहते हुए शिरोधार्य माना । और कहा, ''सर्वत्र कर्ता धर्ता तो आप ही हैं ।'' श्रीमुद्गल योगींद्र महाराज तत्क्षण अंतर्हित हुए । इस प्रकार श्रीमयूरेश प्रभु तथा सद्गुरुनाथ श्रीमुद्गल महाराज के प्रसादरूप अनुमोदन की प्राप्ति के उपरांत श्रीयोगींद्र महाराज स्वानुभूति मंडली सद्गुरुनाथ से आज्ञा प्राप्त कर चली गई । उनके पाँच प्रमुख शिष्यों में से श्री सिद्धेश्वर को छोड अन्य चारों को चार दिशाओं में मठधर्म स्थापना की प्रेरणा देते हुए श्रीयोगींद्रजीने कहा, ''गणेश भक्तियोग का प्रचार-प्रसार करना ही आपका मुख्य कर्तव्य है और उसके परिपालन से ही हमें संतोष प्राप्त होने वाला है इसी को सत्य मानें, यही हमारी आज्ञा है ।''उन चारों के लिए सद्गुरुचरणों का वियोग सहना अत्यंत कठिन प्रतीत हुआ । किंतु श्री सद्गुरुनाथ का आदेश शिरोधार्य मान चारों शिष्य अपने-अपने नियुक्त स्थान पर जाकर आदेशित कार्य चलाते रहे । श्री सिद्धेश्वर जी को श्रीसद्गुरुसेवन का अखंड योग प्राप्त होने से गुरुदेवतात्माभेद संसिद्धि अर्थात ऐक्य भाव का अनुभव प्रत्यक्ष प्रतीति द्वारा प्राप्त हुआ ।

श्रीयोगींद्र महाराज जी की दिग्जययात्रा के प्रसंग में यद्यपि श्रीसुब्रह्मण्य महाराज ने माध्वमत का खंडन किया था तथापि कलिधर्म के लिए पुष्टिप्रद वह वैष्णवपंथीय तंत्रमार्गी मत संपूर्णतया नष्ट होने वाला नहीं था । कलिधर्म की प्रभाववृद्धि होने पर वह पाखंड मत पुन: तेजी से लहलहा उठा । श्रीमोरेश्वर क्षेत्र के

निकटस्थ एक ग्राम में, माध्वपीठ के तत्कालीन पीठाचार्य कोई एक माध्वसंन्यासी अपने शिष्य परिवार समेत यात्रा करते हुए निवास हेतु पधारे थे । उन्हें ज्ञात हुआ कि मोरेश्वर क्षेत्र में अद्‌वैत मत के पुरस्कर्ता कोई एक महान सिद्‌ध पुरुष विद्‌यमान हैं । उनसे मुलाकात करने की इच्छा से उन्होंने अपने शिष्यों के हाथों श्रीयोगींद्र महाराज के लिए संदेश भेजा । श्रीयोगींद्र महाराज ने असमर्थता प्रदर्शित करते हुए सूचित किया कि ''वृद्‌धावस्था के फलस्वरूप शरीर जर्जर हुआ है । हम कहीं भी नहीं जा सकते । अत: आप ही यहाँ आकर मिल लीजिए । इससे ब्रह्मपूर्णसत्ताधिष्ठान महाक्षेत्र के दर्शन का लाभ भी प्राप्त हो जाएगा ।'' मध्वाचार्य ने कहा, ''देवताओं के दर्शन की कोई आवश्यकता नहीं है ।'' इस पर श्रीयोगींद्र महाराज ने उन्हें आश्वस्त कराते हुए उनसे कहा, ''आपकी इच्छा के अनुकूल ऐसा आयोजन किया जाएगा जिससे कि श्रीगणेशजी की मयूरेशमूर्ति के दर्शन नहीं हो पाएँगे । अत: आप मन में किसी भी प्रकार का संदेह धारण न करते हुए अवश्य पधारें ।'' उनके कथन को स्वीकृति देते हुए श्रीमाध्वाचार्य अपने शिष्योंसमेत श्रीयोगींद्र महाराज से मिलने श्रीमयूरेश मंदिर पधारे । श्रीमयूरेश की मूर्ति के सामने एक बड़ा पर्दा लगाकर ऐसा आयोजन किया गया था कि सामने से गुजरने वाले को मूर्ति दिखाई न दे । श्री योगींद्र महाराज जी विघ्नहर के जिस ओसारे में रहते थे, वहाँ भी श्रीविघ्नहर की मूर्ति के सामने पर्दा लगाकर वह मूर्ति न दिखाई दे ऐसी व्यवस्था कराई गई । इस वाद-विवाद को देखने-श्रवण करने, क्षेत्रस्थ जनों की भीड़ मंदिर में इकट्‌ठा हुई थी ।

श्रीमध्वयति महाराज ने श्रीमयूरेश्वर मंदिर में प्रवेश करते ही उच्च रव में 'नारायण-नारायण' की ललकार दी । श्रीयोगींद्र

महाराज ने बड़े सौम्य स्वर में 'गजानन गजानन' कहकर उसका प्रत्युत्तर दिया । 'गजानन' शब्द सुनते ही मध्वयति क्षुब्ध हो कह उठे, ''संन्यासाश्रम धारण करने वाले आप तत्त्वाधिष्ठानपूर्ण सत्तार्द्धधारी साक्षात नारायण स्वरूप होते हुए भी सगुणमायारूप गजानन स्वरूप का आदरपूर्वक समाश्रय करते हैं, क्या यह उचित है ?'' इस आरंभिक कथन से ही वादविवाद शुरु हुआ । यह वादविवाद लगातार सात दिनों तक चल रहा था । श्रीयोगींद्र महाराज ने गणेशाद्वैत सिद्धांत का युक्तियुक्त एवं श्रौतप्रमाण सिद्ध विवेचन किया । ''जीव नर कहलाता है और ईश्वर को नारायण कहा जाता है । यह नारायणी अवस्था अंतिम नहीं है बल्कि श्रुतियों ने सगुण-निर्गुणातीत निर्गुण अवस्था की 'गज' संज्ञा द्वारा प्रशंसा की है । वही उसका परिचय चिह्न आनन अर्थात मुख निश्चित हुआ है । वही गजानन संज्ञाधारक सच्चिदानंद पद लक्ष्य साक्षादात्मा गजानन ही ज्ञेय तथा ध्येय है जो संन्यासरूप की पूर्णता सिद्ध करने वाला है । तद्गत एक सत्तांश जो समसंज्ञांकित विष्णु है वह उसका एक कलांश ही सिद्ध होता है ।'' श्री माध्वयति को भी इस असंदिग्ध अर्थ को स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी । अंतत: सभी संदेह नष्ट होकर भेदबुद्धि का भी अस्त हुआ । सभी ओर लगाए गए पर्दे हटाए गए । श्रीयोगींद्र महाराज की विजय हुई । उक्त माध्वयति अपने शिष्यों तथा अनुयायियों समेत साक्षात ब्रह्मस्वरूप श्री मयूरेश मूर्ति को प्रणाम कर श्रीयोगींद्र महाराज की शरण में चले गए ।

श्रीमयूरेश्वर मंदिर के महाद्वार के सामने एक कछुआ था । उसके पीछे मूषक का आस्थान था और उसके पीछे नंदी को रखा गया था । एक बार नंदी श्रीयोगींद्र जी के सपने में आकर कहने लगा, ''आपने श्रीमयूरेश क्षेत्र का यथोचित जीर्णोद्धार किया

है । क्षेत्रस्थ देवताओं की स्थिति भी शास्त्रानुकूल हो चुकी है । किंतु मेरी स्थिति के बारे में किसी भी प्रकार का विचार नहीं हो पाया है । धर्मादि असुर के विनाश हेतु श्रीमयूरेश ने कल्पविघ्नेश नाम से अवतार धारण किया । उस अवतार में मैं श्रीगणेश का वाहन बना था । मेरी इस इच्छा के अनुसार–कि मुझे श्रीमयूरेश के दर्शन नित्यप्रति प्राप्त होते रहें–मेरा अधिष्ठान मूषक के आगे निश्चित हुआ है । इसी प्रकार का वरदान भी मुझे प्राप्त है । वर्तमान स्थिति में मेरा स्थान मूषक के पीछे है जिससे कि मयूरेश प्रभु के दर्शन मैं प्राप्त नहीं कर सकता और इस प्रकार वरदान का उल्लंघन हो रहा है ।'' इसके बाद श्रीयोगींद्र महाराज ने प्रमुख ग्रामस्थों को बुलाया और समूचा वृत्तांत कथन किया । और यह भी बताया कि इस प्रकार की व्यवस्था करना आवश्यक है । किंतु हठधर्मी क्षेत्रनिवासियों को यह स्वीकार नहीं हुआ । उस काल के रियासती वंश के श्री अमृतराज पेशवा श्रीयोगींद्र महाराज के शिष्य थे । उन्होंने अपनी सेना को भेजते हुए ग्रामवासियों के विरोध की उपेक्षा कर नंदी के पीछे मुषक की स्थापना की । ऐसा करते समय मूषक का वाम कर्ण थोड़ा–सा भग्न हुआ । आगे चलकर वह पूर्ववत कराया भी गया । किंतु इस घटना से सभी ग्रामवासी विक्षुब्ध हुए । इससे श्रीयोगींद्र जी के लिए विक्षेप निर्माण हुआ । परिणामतया उन्होंने क्षेत्रत्याग किया । श्रीमयूरेश मंदिर के विघ्नहर–ओसारे के अपने वास्तव्य को त्यागकर वे पांडवेश्वर में पांडवेश के मंदिर में जाकर रहने लगे । इस घटना से श्रीनग्नभैरवराज प्रभु क्षेत्रस्थों के प्रति कुपित हुए जिससे कि अतिसार की पीड़ा उत्पन्न हुई । सभी क्षेत्रवासी भयभीत हुए । इस आपत्ति के विनाश के लिए क्षेत्र में अनेक प्रकार के अनुष्ठान आरंभ हुए । किंतु किसी से कोई लाभ

नहीं हुआ । अंततोगत्वा संतप्त क्षेत्रपालक श्रीनग्नभैरवराज प्रभु ने मंदिर के मुख्य पूजक एवं सद्भक्त ग्रामस्थों को स्वप्नदर्शन प्रदान करते हुए कहा, ''आपके हाथों श्रीमद्गणेशयोगींद्र जी का अपमान हुआ है । इसी लिए मेरी ही इच्छा से यह सजा आपको दी गई है । अत: आप सब मिलकर श्रीयोगींद्रजी की शरण में जाइए; उनसे प्रार्थना कर उन्हें मोरेश्वर क्षेत्र ले आइए ।'' श्रीनग्नभैरवराज के आदेश से सभी ग्रामवासी भयभीत हुए । क्षमायाचना करते हुए वे श्रीयोगींद्र जी को सम्मानपूर्वक धूमधाम से, बाजे-गाजे के साथ मोरेश्वर ग्राम ले आए ।

श्री योगींद्र महाराज के श्रीक्षेत्र में लौटते ही क्षेत्रस्थित सभी लोगों की पीड़ा तत्काल नष्ट हुई । ऐसी कितनी ही लीला कथाएँ क्षेत्रों में घटित होती रहती हैं । दो सौ वर्षों की इस कालावधि में कितनी ही घटनाएँ घटित हुईं और निरंतर घटित होती थीं । सुयोग्य संस्कार संपन्न श्रद्धालु जन ही उनका महत्त्व समझ सकते थे । इस प्रकार के लीला तुल्य चमत्कार श्रेष्ठतम योगींद्रों-महान विभूतियों के जीवन में घटित होते हैं । योगी स्वयं अपनी ओर से इनका निर्माण नहीं करते बल्कि पुण्यप्रद मार्ग पर चलने के फलस्वरूप ईश्वर से तादात्म्य होने के कारण ईश्वर की इच्छा से अपने आप घटित होते हैं ।

।। श्रीमत्स्वानंदेशगणेशार्पणमस्तु ।।

।। श्री गणेश उपासना योग – भक्तियोग ।।

शाश्वत सुखस्वरूप ब्रह्म एक ही है । सबकी मुख्य इच्छा यही होती है कि 'हमें निरंतर सुख की ही प्राप्ति हो' । उसके लिए ब्रह्मभाव सिद्धि यही सभी का अंतिम लक्ष्य निश्चित होता है । किंतु ब्रह्मज्ञान सिद्धि के अभाव में उसकी प्राप्ति असंभव है । और ब्रह्म तो निरालंब है, निर्गुण है जिसे जानने हेतु उपास्यरूप में अवलंबनात्मक मार्ग उपदेशित हैं । वह विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य तथा गणेश इन पाँच रूपों में अनुभूत होता है । इस एकत्रित समाष्टिपूर्ण आराधना से उस निर्गुण ब्रह्म सत्ता अर्थात सर्व सत्तासमष्टिपूर्ण गणेशी सत्ता का ज्ञान गणेशोपासना मार्ग के आश्रय से ही साध्य होता है ।

सामान्यतया अपेक्षित कैवल्य प्राप्ति ब्रह्मभाव सिद्धि के इच्छुक साधकों के लिए जो साधन उपदेशित हैं वे तीन हैं । वे कर्म, उपासना तथा ज्ञान इस प्रकार त्रिविध अधिकार संपन्नता के आधार पर हैं । जिस साधक का जैसा अधिकार है, उस प्रकार से पूजा-पाठ करना कर्मकांडरूप साधन है । इसे बहिरंग स्वरूप का समझना चाहिए । दृढ़तापूर्वक परमात्मा का मनन-चिंतन करना ज्ञानकांडरूप साधन है जिसे अंतरंग स्वरूप मानना चाहिए । इन दोनों साधनों का जो उभयस्वरूप है उसे उपासनाकांड रूप समझा जाए । इसी को परमभक्ति योग की भी संज्ञा प्राप्त है । उपासना योग में समाहित अंतरंग भावप्रधान ज्ञाननिष्ठा ही भक्तियोग के महत्त्व को प्रदर्शित करती है । जीव के अंतरंग में सहज रूप में स्थित प्रेमभाव सभी प्रकार से, संपूर्णतया उपास्य देवता के प्रति समर्पित करना ही भक्तियोग का प्रधान लक्षण है । उपास्य देवता ही हमारी आत्मा

होती है, अत: इसी भाव से अंतरंग के संपूर्ण प्रेमभाव का उसके प्रति संपूर्ण समर्पण करने की साधना पद्धति का उपदेश दिया जाता है तथा अवलंब किया जाता है जिसे भजन कहा जाता है । भक्तियोग की पद्धति इसी प्रकार निश्चित है कि काया, वाचा, मन तथा बुद्धि इस प्रकार सभी पहलुओं का अनुसरण करने वाला भजन निरंतर होता रहे ।

श्री गणेश भक्ति करने वाले उपासक तीन प्रकार के होते हैं –

१) गणेश पंचायतन की पूजा करने वाले स्मार्त गाणपत

२) गणेश को पूर्णब्रह्म माननेवाले एकनिष्ठ गाणपत

३) श्रीविष्णु शिवादि देवताओं के उपासक जो अपने-अपने उपासना-धर्माचरण के आरंभ में श्रीगणेश का आराधन करते हैं उन्हें एकदेशीय गाणपत कहा जाए । जिसके अंत:करण में श्रुतिसिद्ध गणेशज्ञान अव्यक्तरूप में विद्यमान होता है और उसका बोध होते ही जिसकी बुद्धि तत्काल यथार्थ ग्रहण करती है वह पूर्व संस्कार प्राप्त गणेशविचारक अव्यक्तबीज कहलाता है । भक्तियोगांतर्गत मात्र बाह्य स्वरूप के प्रति भक्ति का भाव रखते हुए उपासना करने वाले प्रतीकोपास्तिगा कहलाते हैं तथा उपास्य देवता के स्वरूप का पूर्ण ब्रह्मत्व समझकर, उसी को अपनी आत्मा मानते हुए दृढनिष्ठा से भजन-भक्ति करने वाले अहंग्रहोपास्तिमय कहलाते हैं ।

ब्रह्म का सगुण-निर्गुण रूप में अनेकविध प्रकार से वर्णन किया गया है । उनकी परिसमाप्ति स्वसंवेद्य संपूर्ण स्वानंद महिमा में होती है । वही साक्षादात्मा तत्वमसि स्वरूप निश्चित हुआ है । उसी को गणेशब्रह्म का ध्येय स्वरूप समझकर निष्ठापूर्वक उपासना करना ही श्रीगणेश की एकांगी उपासना है; इसे करने वाला एकनिष्ठ

गाणपत कहलाता है । सिद्धि जिसका शरीर है, बुद्धि जिसका मस्तक है तथा जो स्वयं पूर्णात्मा है, वही श्रीगणेश है; उसका ऐक्य भाव से सेवन करना ही विशुद्ध पूजन-निष्ठा है । सिद्धि बुद्धि समेत गणेशाराधन करना प्रसादनिष्ठा कहलाती है । साक्षादात्मा परब्रह्म गणराजप्रभू स्वरूप में प्रतीत होता है; उसी का उपासन साक्षात ब्रह्मभाव सिद्धिप्रदायक है इस प्रकार का निर्मल, विशुद्ध अर्थ जिनमें प्रस्फुटित नहीं होता; किंतु जो स्थूल रूप में सर्वात्मा ब्रह्मणस्पति गणराज हैं इस प्रकार की धारणा रखते हैं अर्थात जिनकी एकनिष्ठ योग्यता नहीं होती ऐसे सामान्य भाव धारकों के लिए पंचार्चननिष्ठा उपयुक्त साबित हुई है । निष्ठा से तात्पर्य है नितरांस्थिति । अपने उपास्य स्वरूप के प्रति अंतर्भावना का पूर्णतया स्थिर होना और उसी के अनुकूल सभी क्रियाकलापों का घटित होना, तथा अन्य किसी निश्चय के लिए न तो स्थान मिलना न ही स्वीकृति देना ही निष्ठा का स्वरूप है । हमें जो भी प्राप्त करना है वह सब उपास्य देवता की कृपासामर्थ्य से ही प्राप्त होने वाला है । उससे अप्राप्य कुछ भी नहीं है और किसी तरह की अनिष्ट-प्राप्ति का भय रखने की भी आवश्यकता नहीं है अथवा ऐसी संभावना की परवाह करने की भी आवश्यकता नहीं है, इस प्रकार की निश्चल, निर्मल अंतर्वृत्ति से जो निरंतर सजग रहकर शास्त्रसम्मत मार्ग से उपासना करता रहता है; वही निष्ठावान अर्थात एकनिष्ठ भक्त समझा जाता है । परमएकनिष्ठ गणेशोपासकों के लिए सभी ओर से, सर्वदा, सर्वत्र एकमात्र श्रीगणेश स्वरूप का भान ही निरंतर स्मरण रहना चाहिए । वही सजगता कायम रहनी चाहिए । उन्हें एकमात्र गणेशस्वरूप का ही दर्शन, स्मरण, कीर्तन, पूजन स्तवनादि करना चाहिए । अन्य किसी भी प्रकार की आसक्ति अथवा भय उन्हें नहीं

रखना चाहिए । इसी के साथ इस गाणेशी परम एकनिष्ठांतर्गत अन्य देवि-देवताओं के प्रति यत्किंचित् भी अपकर्षभाव अथवा द्वेषभाव नहीं रहना चाहिए । ऐसा निष्ठावान ही उपास्य देवता की सच्ची एवं संपूर्ण प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है ।

साधक गणेशोपासक को समय दीक्षाविधि से एकाक्षर-मंत्रग्रहण तथा विशेष दीक्षा-विधि से गणेशमूर्ति पूजा-ग्रहण करते हुए श्रीगणराज प्रभु के सांगोपांग उपासना मार्ग का समन्वित रूप अवश्य प्राप्त करना चाहिए । तदनंतर उपासना-विधि को चलाना आवश्यक है । ब्रह्मणस्पति सूक्त, गणेशाथर्वशीर्ष, सहस्रनाम, कीलक समेत कवच तथा हृदय इन षडंगों सहित स्तवराज, वेदपाद स्तव, वज्रपंजर कवच, मानसपूजा स्तोत्र आदि पंचांगों का पठन करते हुए मंत्रजप, बाह्यपूजन, प्रस्थानत्रयी का पठन एवं परिशीलन करना, दोनों चतुर्थियों के दिन विशेषपूजन करना, श्रीमन्मुद्गल कृत स्तोत्रोत्तमस्तोत्र, श्रीभ्रुशुंडिकृत तेजोवर्धन स्तोत्र एवं गुणेशकृत स्तुतिसारस्तोत्र-इन तीनों प्रमुख स्तोत्रों समेत वक्रतुंडादि आठ विनायकों के स्तोत्र तथा स्वानंदस्तोत्र, अयोगस्तोत्र और पूर्णयोग स्तोत्र, मंत्रपुरश्चरण, ब्रह्मणस्पतियज्ञाचरण, मौद्गल गणेश पुराण पठन, इसी प्रकार शतोपनिषद्गीतादि पठन, मयूर क्षेत्रयात्रासेवन इत्यादि नैमित्तिक अंगों को अपनाते हुए इस तरह नित्यनैमित्तिक अंगों से गणेशोपासना करने वाला गणेशोपासक अनिवार्यतया संपादनीय चौबीस संस्कारों की क्रमशः सिद्धि प्राप्त कर समाधि योग की सिद्धि प्राप्त करता है तथा निर्वाणदीक्षा के संसिद्ध होने से पूर्णयोग शांति प्राप्त होता है । चौबीस संस्कारों के अंतर्गत समय-दीक्षा तथा तदंगभूत पाँच संस्कार वर्ण, भक्ति, विरजा, सिंदूर एवं तिलक; विशेष दीक्षा तथा तदंगभूत वार, मास, संवत्सर, व्रतसेवन, स्वदेशस्थ क्षेत्रयात्रा एवं मायुर

क्षेत्र यात्रा इस प्रकार के पाँच संस्कार, महाविशेष दीक्षा एवं तदंगभूत पाँच संस्कार अर्थात - गणेशाग्निहोत्र - वैश्वदेव, आवृत्तिजप, पूजा एवं तर्पण तथा तत्त्वज्ञान, उद्धार, निरीक्षण देवानुमोद और वेदानुमोद इन पाँच संस्कारों समेत ज्ञानदीक्षा इस प्रकार कुल मिलाकर चौबीस संस्कार समाहित हैं ।

शिष्य-प्रशिष्यादि के कुल के सदस्य यथामति गणेशोपासना करते थे किंतु वैदिकोपासना के लिए आवश्यक बुद्धि तथा अधिकार की विद्यमानता उनमें नहीं थी । लेकिन श्रद्धा-भक्ति उच्च स्तर की थी । यत्र-तत्र सर्वत्र वर्णाश्रम निष्ठा एवं निर्मल आचार निष्ठा का नितांत अभाव हुआ था । परिणामतया ब्रह्मबीजोद्भव मात्र से ब्राह्मण कहलाने की प्रतीति सर्वत्र उपस्थित होने लगी । भक्तियोग में इस प्रकार की भावना दिखाई देती थी कि देवता चाहे जो हो, सभी देवता तो एक ही होते हैं फिर किसी की भी भक्ति करने में कोई आपत्ति नहीं है । इन सभी के उद्धार के विचार से श्रीयोगींद्र महाराज ने दीक्षा-बोधन पर ध्यान न देते हुए मंत्रोपदेश रूप अदीक्षा विधि के प्रकार अर्थात सभी के लिए आचरण सुलभ भक्तियोग प्रधान मार्ग का निर्माण कराया । किंतु सभी के लिए एक नियम निर्धारित किया कि सभी लोग इसी दृढ़भाव को लेकर चलें कि ज्येष्ठराज श्रीगणराज प्रभु सार्वभौम सत्ताधारक सर्वपूज्य, सर्वादिपूज्य साक्षात ब्रह्म ब्रह्मणस्पति हैं और उन्हीं की उपासना - भक्ति शास्त्रप्रमाणों द्वारा सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व विशिष्ट रूप में संसिद्ध निश्चित हुई है । लेकिन एकाध संस्कारपूर्ण, सात्त्विक भावसंपन्न वर्णाश्रमधर्मनिष्ठ व्यक्ति के मिल जाने पर उसे वैदिक दीक्षाविधि के अनुसार गणेशोपासना प्रदान की जाती थी । निर्मल वैदिक उपासना का अधिकार कहीं भी शेष नहीं था इसे देख

श्रीयोगींद्र महाराज ने मिश्रमार्ग की योजना की । वर्णाश्रमधर्मोक्त पद्धति से संस्कार किए जाने के फलस्वरूप स्नान-संध्यादि नित्यनैमित्तिक आचार वेदोक्त पद्धति से करना तथा उपासना भक्ति धर्म का आचरण तंत्रोक्त मार्ग से दक्षिण तंत्र से चलाना इस प्रकार को मिश्रमार्ग कहा जाता है । अंत:करणस्थित श्रद्धा, निष्ठा एवं तदनुरूप बाह्य आचार-विचारों की निग्रहप्रवृत्ति से ही किसी के अधिकार को जाना जा सकता है । अत: इस प्रकार की परिस्थिति के अनुसार मिश्रमार्ग प्रवर्तित किया गया । श्रीगणेश विषयक उत्कंट भावना एवं बुद्धि हेतु श्रीयोगींद्र महाराज ने प्राकृत भाषा में प्रचुर मात्रा में ग्रंथरचना की जिसके नित्य सेवन से ब्राह्मणस्पत निष्ठा ही श्रद्धालु जनों के हृदय में निस्संदेह अंकित हो जाए । इसी प्रकार की निर्मल अनुभूति के लिए योगींद्र जी ने 'गणेश विजय' नामक ग्रंथ की रचना की । उक्त ग्रंथ को सर्वसारनिर्णय का प्राकृतांतर्गत विशदीकरण ही मानना चाहिए । श्रीयोगींद्र जी ने गणेश गुह्य नामक परमोच्च फलप्रदायक ओवी (छंद) बद्ध स्तोत्र की रचना की । श्रीमद् गणेशगीता पर 'योगेश्वरी' नामक प्राकृत ओवी (छंद) बद्ध टीका लिखी । गणेशगीता पर लिखे सुप्रसिद्ध गार्ग्यभाष्य तथा योगींद्रभाष्य का विस्तृत विशदीकरण योगेश्वरी में प्रस्तुत है । इस प्रकार श्रीयोगींद्र महाराज ने अभंग, पद, स्तोत्र आदि अनेक प्राकृत ग्रंथों की रचना की है । इन सभी बातों की परिपूर्णता एकमात्र मौद्गल सिद्धांत में ही होती है । पूर्णयोगशांति एवं सिद्धिप्रदायक इस ग्रंथ को संकल्पपूर्वक सहेजकर रखना सभी के लिए अत्यावश्यक है । ऋग्वेद का ब्रह्मणस्पति सूक्त अत्यंत महत्त्वपूर्ण, श्रेष्ठ, प्रमाणभूत तथा संपूर्ण ब्राह्मणस्पत ज्ञान प्रदायक सिद्ध हुआ है । इसी प्रकार बृहत्सूक्तादि अन्य सूक्त भी गणेश सेवा हेतु उपयोगी हैं ।

साक्षादात्मा परब्रह्म श्रीगणराज प्रभु के सर्वश्रेष्ठ तथा सभी प्रकार से सेव्य होते हुए भी उनके प्रति प्रेमपूर्ण निष्ठा किसी में दिखाई नहीं देती । श्री योगींद्र महाराज इस बात का विवेचन करते हैं कि ऐसा क्यों नहीं होता कि सभी प्रभु श्री गणराज की भक्ति करें । वे कहते हैं, ''यह सच है कि गाणेश भक्तियोग अत्यंत श्रेष्ठ फल प्रदायक है । किंतु उचित योग्यता के अभाव में न तो उसे समझा जा सकता है और न ही वह स्वीकार्य प्रतीत होता है । क्योंकि मायामोह के परिणाम स्वरूप बुद्धि पर अनेकविध आवरण निर्माण होकर सभी लोग गणेशभक्ति से ठगे जाते हैं, वंचित होते हैं । मायाविलास के विविध प्रकार के दर्शन उनकी बुद्धि को व्यामोहित कर श्रीगणेश का स्वरूप आच्छादित करते हैं । वेदों द्वारा स्तवित तथा सर्वत्र प्रसिद्ध पूर्णयोगशांति महिमाधारक साक्षादात्मा ब्रह्मणस्पति गणेश स्वरूप मात्र उन्हीं के लिए यथार्थ रूप में ज्ञात होगा जो सारस्वतयोग समाधि अवस्था को प्राप्त हुए हैं । स्वसंवेदशांतिदायिनी समाधि सिद्ध होने पर साक्षात्कृत होने वाला गणेश स्वरूप मायामोहवशीभूत साधकों के लिए ज्ञेय न होने के फलस्वरूप अनेकविध भावों में उलझकर वे गणेश स्वरूप को जान नहीं सकते। इसी प्रकार गणेश प्रभु के सत्ताविहार की प्रतीति विद्या, अविद्या पादों में अनुभूत होकर पृथक्ता प्रदर्शित करने वाले विशेष कार्यकारी पंचेश्वर, सत्तांश गणेश की विभूतियाँ ही बन चुके हैं । उन्होंने श्रीगणेश के सत्य स्वरूप को आच्छादित किया है । उन विभूतियों के साक्षात प्रकटीकरण द्वारा उनका स्वरूप प्रस्तुत किए बिना गणेश के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होना किसी के लिए भी संभव नहीं है । सर्वत्र ज्ञानस्वरूप से सजी महाबुद्धि, ऐश्वर्य प्रकाशिनी सिद्धि एवं उनसे क्रीडा कराने वाला सिद्धिबुद्धिपति श्री स्वानंदेश प्रभु

ब्रह्मणस्पतित्व धारण करते हुए क्रीड़ा करता रहता है । सिद्धिबुद्धिकृत विलासभ्रम का त्याग करने वाले, श्रीगणेश के भक्तप्रवर योगींद्र पुरुष ही श्री गणराज प्रभु के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । विश्व विलास का परिचालन करने वाले श्री ब्रह्मादि में स्थित चित्तवृत्तियों की सहायता से लीलाविहार चलता रहता है । इसी प्रकार जीवमात्र में स्थित वृत्ति – अर्थात क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरोध वृत्ति – के अनुसार अनेकविध भावों से चित्तवृत्ति जुड़ जाती है और चित्त में उसके प्रति प्रेम प्रकाशित होता रहता है । परिणामतया उन चित्तवृत्तियों के त्याग से प्राप्त होने वाले चिंतामणि स्वानंदेश श्री गणराज प्रभुविषयक परमप्रीति का उद्भव उस चित्त में कैसे हो सकता है ? यद्यपि श्रुतिप्रमाणों से वर्णित ब्रह्मणस्पतित्व तथा ज्येष्ठराजत्व का ज्ञान सभी को हो जाए तथापि विविध चित्तवृत्तियों के प्रवाह में अटके हुए लोगों के चित्त में श्रीगणेशविषयक विमल प्रीति उत्पन्न नहीं होती । श्रीगणराज प्रभु के अतिरिक्त जिनके अन्य सर्वत्र पूर्ण विरक्ति प्रतिष्ठित होती है, मात्र उन्हीं में श्रीगणेशविषयक सच्ची प्रीति उत्पन्न होती है । कार्यकारी पंचेश्वर अपनी ओर से, अपनी क्षमता से स्वतंत्र सत्तासमर्थ विहार करते हैं । उनका ऐश्वर्य भी विशाल रूप में प्रतीत होता है । सामान्य बुद्धि के धनी उनके प्रति प्रीतियुक्त होते हैं क्योंकि उन्हें इस सूक्ष्मभूत भेद का ज्ञान नहीं होता कि सत्ता के दाता श्रीगणराज प्रभू ही हैं । इसे समझने की योग्यता ही उनमें नहीं होती । मलिनचित्त – व्यक्तियों में वह यथार्थ भावना प्रकाशित नहीं हो सकती । यही कारण है कि पूर्व संस्कारों के अनुसार जो श्रद्धालु जन जिन विभूतियों के प्रति समर्पित होते हैं; श्रीगणराज प्रभु का ऐश्वर्यविषयक उतना ही ज्ञान उन्हें प्राप्त होता है । बहुत–से पुराणों

में कई बार वर्णन प्राप्त होता है कि श्रीगणेश जी शिवपुत्र हैं अर्थात भगवान श्रीशिवजी के पुत्र हैं । लोग उसी को संपूर्ण सत्य मानकर चलते हैं । सत्पात्र शोधन हेतु श्रीगणेश जी ने अपना मूल ऐश्वर्य आच्छादित किया है । सिद्धि – बुद्धि के मोह में अटककर मोहित बने लोग उस ऐश्वर्य को जानने में असमर्थ हैं । यही कारण है कि श्रीगणराज प्रभु की भक्ति रूढ नहीं हो पाई है ।

।। श्रीमत्सद्गुरु गणेशयोगींद्रचरणार्पणमस्तु ।।

।। श्री योगींद्रमहाराज का शिष्य संप्रदाय ।।

समूचे भारतवर्ष में श्रीयोगींद्र महाराज का शिष्य संप्रदाय फैला हुआ था । उसमें प्रमुख पाँच शिष्यों - अर्थात श्री सिद्धेश्वर महाराज, श्री सुब्रह्मण्य योगींद्र, श्री ढुंढिराजेंद्र, श्री श्रीकृष्णेंद्र तथा श्रीराघवेंद्र-के अलावा जो विशेष शिष्य हैं उनका वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है ।

श्री भुरे महाराज :- विदर्भ प्रदेशांतर्गत अदोष नामक गाणपत क्षेत्र प्रसिद्ध है । श्री गणेश के इक्कीस महाक्षेत्रों में से वह एक है । वहाँ के अधिष्ठाता पुराणों में श्री गणराज प्रभु 'शमीविघ्नेश वक्रतुंड' संज्ञा से प्रसिद्ध हैं । वामनावतार भगवान श्रीविष्णु ने बलियज्ञ के विनाश हेतु विशेष सामर्थ्य प्राप्ति के लिए इसी क्षेत्र में तपश्चरण करते हुए अपेक्षित सिद्धि प्राप्त की । वहाँ उन्होंने वक्रतुंड गणेश की चतुर्भुजमूर्ति की स्थापना की । प्रस्तुत क्षेत्र 'अदासा' इस अपभ्रष्ट नाम से जाना जाता है । उसके निकट नागपूर शहर में तब भुरे उपनाम का एक ब्राह्मण परिवार रहता था । उस कुल के बंगाजी नामक सदाचारी व्यक्ति वक्रतुंड गणेश के अनन्यनिष्ठ भक्त थे । प्रतिदिन अदोष क्षेत्र जाकर वक्रतुंड गणेश के पूजन का उनका नेम था । एक दिन उन्हें स्वप्न आया । स्वप्न में उनसे कहा गया, ''यथाशास्त्र एवं संप्रदायशुद्ध उपासना के अभाव में संपूर्ण गाणेशीकृपा प्राप्त नहीं होगी । अत: मोरेश्वर क्षेत्र जाकर तुम श्रीगणेश योगींद्र महाराज का समाश्रय करो ।'' स्वप्न के अनुसार श्री बंगाजी भुरे मोरेश्वर जाकर श्रीयोगींद्र चरणों में विनम्र बन खड़े हुए । उनके पूर्वार्जित संस्कारों तथा भक्तिनिष्ठा को पहचानकर श्रीयोगींद्र महाराज ने उन्हें सांगोपांग विधि

से गाणेशी उपासना प्रदान की तथा अदोष क्षेत्र जाकर पुरश्चरणादि का अवलंब करते हुए संपूर्ण गाणेशसिद्धि प्राप्त करने का आदेश दिया । मुख्यतया श्रीयोगींद्र जी का आश्रय करने के पश्चात बंगाजी के स्थान पर उनका सुखानंद नाम ही रुढ़ हुआ । श्रीगणेशोपासना के फलस्वरूप उन्हें संपूर्णरूप में गणेशसिद्धि प्राप्त हुई । उनके अधिकार को जानते हुए श्रीयोगींद्र महाराज जी ने उन्हें मिश्र विधियुक्त गाणपतमार्ग प्रवृत्त करने की आज्ञा दी । उन्होंने अदोष क्षेत्र का जीर्णोद्धार किया । स्वप्नादेश तथा समय-समय पर प्रकाशित स्फूर्ति के अनुसार उन्होंने जीर्णोद्धार का कार्य संपन्न किया । ऐसे एकनिष्ठ गणेशभक्त प्रवर श्री सुखानंद महाराज पर अकस्मात एक बड़ा संकट आया । उस कालखंड में नागपूर में भोंसले कुल का राजा शासन करता था । उनके कुछ दरबारियों ने श्रीसुखानंद महाराज के विरोध में राजा के कान भर दिए और उनसे कहा, ''आपके राज्य के बड़े अधिकारी श्रीसुखानंद महाराज के भक्तिजाल में फँसे हैं । उन्होंने आपकी अनुमति के बिना ही खजाने के धन को खर्च कर क्षेत्र का जीर्णोद्धार किया है ।'' ऐसी बात ज्ञात होने पर राजा को बड़ा क्रोध आया और उसने आव देखा न ताव, श्रीसुखानंद महाराज को पकड़कर कारागृह में कैद कर रखा । इस घटना से श्रीसुखानंद महाराज को अतीव दुख हुआ । श्रीवक्रतुंड पूजन के नित्यक्रम में व्यवधान उपस्थित होने के कारण उन्होंने श्रीयोगींद्र महाराज की प्रार्थना आरंभ की । उस समय बहुत बड़ा चमत्कार घटित हुआ । पहरेदार सो गए । ताले टूटकर गिर पड़े । कारागृह का दरवाज़ा खुल गया और श्रीसुखानंद महाराज ने अदोष क्षेत्र जाकर अपना सेवाकार्य यथोचित संपन्न किया । इस घटना का समाचार राजा को प्राप्त हुआ ।

उसने कारागृह में जाकर देखा तो श्रीसुखानंद महाराज वहाँ बैठे हुए पाए गए । दरवाजे बंद हैं, बंदोबस्त कायम है । पहरेदारों से पूछा तो उन्होंने बताया कि, ''हम सचेत थे । न कोई आया न गया ।'' राजा को अतीव दु:ख हुआ । पश्चाताप-दग्ध हो वह श्रीसुखानंद महाराज की शरण में गया और क्षमायाचना करते हुए उनका शिष्य बना । भक्त सुखानंद के लिए स्वयं श्री गणराज प्रभु बंदी बने । एक बार आद्यशंकराचार्य पीठस्थित कोई शंकराचार्य संचार हेतु नागपूर पधारे थे । तब कुछ लोगों ने श्रीसुखानंद जी की अनन्य भक्ति को लेकर विचित्र शिकायत की । तब पीठाचार्यने उन्हें बुलाया और उनके सम्मुख शालिग्राम रखकर उसका पूजन करने के लिए बाध्य किया । श्रीसुखानंद महाराज ने श्रीगणेश का ध्यान किया और शालिग्राम पर दूर्वांकुर समर्पित किए । तभी वह शालिग्राम सिंदूरवर्ण शुंडाधर बना हुआ सभी ने देखा । इस प्रसंग से श्रीशंकराचार्य तथा अन्य लोग लज्जित हुए । उन्होंने जितने भी पदों-अभंगों आदि की रचना की है; प्रत्येक के समापन में सद्गुरु के रूप में गणेशयोगी का नामोल्लेख है तथा स्वयं अपने लिए विष्णुकाशीप नाम का प्रयोग किया गया है । श्रीक्षेत्र नामलगाँव के समीप रामसगाँव नामक ग्राम प्रसिद्ध है । वहाँ रहने वाला, कण्वशाखा का संतुभद्र नामक ब्राह्मण श्रीयोगींद्रजी का शिष्य था । कृष्णा नदी के तट पर श्रीक्षेत्र वाई में माध्यंदिन शाखा के ब्राह्मण बाळकृष्ण पाठक अथवा दीक्षित नाम से रहते थे । वे योगींद्रजी के शिष्य थे । गुजरात प्रदेश का निवासी महान अनन्य गणेशभक्त गजाननदास नामक शूद्र भी श्री योगींद्र जी का शिष्य था । उनकी दृढनिष्ठा के फलस्वरूप पुरी के श्री जगन्नाथ के शुंडा निकल आने की बात प्रसिद्ध है । वऱ्हाड

प्रदेश के लालबोवा नामक गणेशभक्त श्री योगींद्र जी के शिष्य थे जिनके ध्यानबल से ही मानों श्री गणेश के समान ही सिंदूरवर्ण शरीर का लाभ उन्हें हुआ था । नगर के बाळभट्ट काजळे बहुत बड़े रचनाकार थे । वे भी श्रीमद्गणेशयोगींद्राचार्य महाराज के शिष्य थे । सद्गुरु-कृपा से ही श्रीगणेश की सर्वोत्तम महिमा उन्हें संपूर्णतया ज्ञात हुई । श्रीयोगींद्र महाराज ने सर्वसार निर्णय नामक संस्कृत ग्रंथ की रचना की है । श्री बाळंभट्ट काजळे जी ने उसपर आधारित श्लोकबद्ध सुंदर काव्य की रचना की है । पुणे के ओंकार कुल के आदिपुरुष श्रीयोगींद्र महाराज के महान शिष्य थे । उनकी नित्यप्रति की गणेशपूजा अष्टौप्रहर निरंतर दिनोंदिन चलती रहती थी । संपूर्ण ब्रह्मणस्पति सूक्तावर्तन के उच्चारण से प्रत्येक उपचार समर्पित करना, मंत्रयुक्त नामावली से सहस्रदूर्वार्चन करना आदि विलक्षण पद्धति से वह महापूजा चलती थी । ऐसी स्थिति में कौन-से समय पर किस नैवेद्य की आवश्यकता होगी इसका निश्चित नियम ज्ञात न होने के कारण रसोइया महाराज नित्य पाकसिद्धि करके प्रतीक्षारत रहते थे । अपने जीवन का कुछ हिस्सा त्याग कर उन्होंने अपने पुत्र को प्राणदान दिया । शक १७८० की आषाढ कृष्णा चतुर्दशी को वे समाधिस्थ हुए । उनका समाधिस्थान औरंगाबाद में विद्यमान है । श्रीक्षेत्र मोरेश्वर में गोसावी कुल सुप्रसिद्ध है । उस कुल के आदिपुरुष श्री मोरेश्वर गोसावी महाराज ने प्रभुकृपा से ही उपलब्ध हुए श्रीगणेशपुराण पर ओवी (छंद) बद्ध भाष्य की रचना की है । वे अत्यंत महान अनन्य गणेशभक्त थे । उनके पुत्र सर्वोत्तम गोसावी श्री योगींद्र के शिष्य बने । सर्वोत्तम का पुत्र विनायक गोसावी भी योगींद्र-शिष्य बना । तब से श्री योगींद्र मठस्थान ही इस कुल का गुरुस्थान निश्चित

हुआ है । उनके कुल में इस प्रकार की रुढि प्रचलित है कि एकमात्र गाणेश उपासना धर्म के अलावा अन्य कोई भी कुलाचार उनके यहाँ विद्यमान नहीं है । लंबोदरीबाई नामक एक महान गणेशिनी भक्तश्रेष्ठ हुई हैं । वे भी श्री योगींद्र जी से अनुग्रहित थीं । भजन के सिलसिले में व्यवधान उपस्थित न हो इसलिए उसकी प्रार्थना पर श्रीगणराज प्रभु ने उस की भूख को ही गला डाला । जहाँ भी परम विमल तथा एकनिष्ठापूर्ण गाणेशी भक्तिभाव के दर्शन होते, श्रीयोगींद्र महाराज अत्यंत प्रसन्न हो जाते थे । श्री मोरेश्वर क्षेत्र में श्रीमयूरेश-सेवा हेतु गजानन देव ओझरकर बाप्पादेव नाम से ख्यातकीर्त भक्त विद्यमान थे । बाप्पाजी-पुत्र मंगलमूर्ती शैशवावस्था से ही श्री योगींद्र महाराज के दर्शन करने जाते थे । बालक मंगलमूर्ति की आवाज अत्यंत मधुर थी । जिससे कि श्री योगींद्र महाराज उन्हें भक्तिपरक गीतों का गान करने के लिए कहते थे । श्री मोरया गोसावी महाराज के सभी पदों में से मात्र ''पाहता त्रिभुवनी तुझ्या, न देखो नयनी एका मोरयावाचूनी हो मोक्षदाता'' (अर्थात - हे मोक्षदाता, आपके तीनों लोकों में देखने पर एकमात्र मोरया के अलावा बाकी कुछ भी देखने की मेरी इच्छा नहीं है ।) यही पद श्री योगींद्र महाराज के लिए अतीव प्रिय था । उसका गायन आरंभ होते ही तल्लीन हो वे झूमने - डोलने लगते थे । उनकी आँखों से निरंतर अश्रुधाराएँ बहती रहती थीं ।

श्रीमद्गणेश योगींद्र महाराज कुल मिलाकर दो सौ अट्ठाईस वर्ष भूतल पर विद्यमान थे । अपनी उपस्थिति में उन्होंने सात पीढ़ियों पुरुषों को गाणपत्य बनाया । दुसरे शब्दो में एक ही कुल के सप्तवंशीय पुरुषों के वे गुरु थे । अपने जीवन की पूर्व शती

और उत्तर शती में उन्होंने अधिकारी जनों के उद्धार का कार्य किया जिसके फलस्वरूप उनकी आत्यंतिक कीर्ति सर्वत्र गूँजती रही ।

।। श्रीमत्सद्गुरु गणेशयोगींद्रचरणार्पणमस्तु ।।

।।श्रीमद्गणेशयोगींद्र महाराज की अवतार–समाप्ति : समाधि।।

श्रीमद्गणेश योगींद्राचार्य महाराज कुल दो सौ अट्ठाईस वर्षों तक इस भूतल पर विद्यमान थे । अपने जीवन में उन्होंने अधिकारी जनों के उद्धार का कार्य किया । इस प्रकार कालक्रम के चलते अवतारसमाप्ति का समय निकट जान उन्होंने अपने दूरस्थित शिष्यों को बुला लिया । सभी शिष्य तथा ग्रामनिवासियों के सम्मिलित होने पर श्री योगींद्र महाराज ने उनसे कहा, ''श्रीमयूरेश प्रभु के आदेशानुसार संपादनीय कार्य अब तक संपूर्णतया संपादित हुआ है । प्रथम शती में उस काल की अधिकार–स्थिति के अनुसार हमने गणेशाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की । द्वितीय शती में पहले की तरह अधिकारस्थिति विद्यमान नहीं रही है । अत: मिश्रमार्ग की स्थापना की गई । बाह्य आचरण की दृष्टि से यद्यपि यह भिन्न–भिन्न प्रकार है तथापि श्रीगणराज प्रभु के सर्वश्रेष्ठ वैभव को जानकर, संपूर्णतया उसी की अनन्य भक्ति करने का भक्तिभाव सर्वत्र एकरूप ही सिद्ध हुआ है । कोई चाहे जैसा भी हो यदि वह परमश्रेष्ठ गाणेशी भक्ति प्राप्त करेगा तो निश्चय ही गणराज प्रभु के लिए अत्यंत प्रिय होगा तथा उन्हीं की कृपा से संपूर्ण गाणेशज्ञानसिद्धि प्राप्त कर सर्वथैव कृतकार्य बनेगा ।'' तब श्रीयोगींद्र महाराज के शिष्य सिद्धेश्वर महाराज ने एक शंका उपस्थित की, ''क्या मिश्रामार्गीय गाणपत जन वैदिकमार्गीय बनेंगे या नहीं ? और कब, कैसे बनेंगे ?'' श्रीयोगींद्र महाराज ने कहा, ''ये मिश्रमार्गीय लोग मुख्यतया हमारे संप्रदाय के प्रति ही विशेष निष्ठा धारण करेंगे । बाह्य साधन की दृष्टि से भले ही वे मिश्रमार्गानुकूल उपासना करें,

उनके निष्ठाबल के फलस्वरूप अंततोगत्वा वे वैदिकमार्गक बनेंगे । इस बात को लेकर किसी प्रकार के संदेह की गुँजाइश नहीं है । इनमें से परिपक्व संस्कार प्राप्त लोग पुन: जन्म लेकर वैदिक गाणेशमार्गक बनेंगे । ऐसे लोगों के उद्धार के लिए वैदिक गाणेशाद्वैत सिद्धांत बार-बार प्रकाशित होकर तत्साधक योगींद्र मठस्थान भी बार-बार उद्धृत होने वाला है । उक्त कार्य संपादन हेतु अधिकारी जीवों के यहाँ हमारा आगमन निरंतर होता ही रहने वाला है । ऐसी स्थिति में हमारी सहायता के लिए तुम्हें भी अनिवार्यतया आना ही होगा । श्रीमयूरेश कृपाबल के फलस्वरूप ही अधिकारी पद के लिए सुयोग्य और अधिकार प्राप्त हम जैसे लोगों की गमनागमन संबद्धता को मात्र ईशेच्छामूलक एवं तत्कार्यसाधक समझना है । प्राप्त जीवभाव मुक्त स्वरूप का ही प्रमाणित हुआ है ।'' श्रीसद्गुरुनाथ के उपदेशामृत का पान कर सर्वथैव संशयरहित बने सच्छिष्य श्रेष्ठ श्री सिद्धेश्वरमहाराज सद्गुरु को प्रणाम कर प्रेमानंद में मग्न हुए । इस प्रकार अंतिम व्यवस्था हो जाने पर माघ कृष्णा नवमी का दिन आ गया । उस दिन श्रीयोगींद्र महाराज ने श्रीमयूरेश प्रभु की महापूजा की तथा प्रार्थना करते हुए विदा माँगी । उसी क्षण श्रीगणराज प्रभु मूर्ति से प्रकट हुए । उन्होंने श्रीयोगींद्र महाराज को हृदय से लगाया । मानों उनके मन में विचार आया कि मेरे परमप्रिय भक्तश्रेष्ठ का अवतार कार्य संपन्न हुआ है । अब इस भक्तप्रवर की मूर्ति अलग से नहीं दिखाई देगी । विरह की इस भावना से मयूरेश प्रभु का गला भर आया । आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं । कुछ बोलना असंभव प्रतीत हुआ । उस समय महामाया सिद्धि तथा बुद्धि भी उनके साथ थीं । प्रभु की इस अवस्था पर उन्होंने आश्चर्य व्यक्त

किया । उन्होंने कहा, ''महाराज, साधारण प्राकृत जीवों की तरह आपकी ऐसी हालत क्यों हुई ? या कि यह दिखावा मात्र है ?'' उस पर प्रभु ने कहा, ''मेरा यह परमप्रिय श्रेष्ठ भक्त आज तक मेरी आँखो के सामने विचरण कर रहा था । मेरा अतिप्रिय कार्य कर रहा था । प्रार्थना के निमित्त मुझे चैतन्ययुक्त करता था । और मुझे भी यह सब अतीव प्रिय था । किंतु अब वह सब नष्ट होने वाला है ।'' श्रीमयूरेश प्रभू ने श्री योगींद्र महाराज से कहा, ''तुम तो साक्षात् मद्गल ही हो; अत: दिव्यस्वरूप स्वानंदस्थान आने पर वियोगाभास का अनुभव नहीं होगा ।'' इस संवाद के चलते वहाँ श्री भगवान मुद्गल अवतीर्ण हुए । गुफानिवासी शुक, जडभरत दत्त आदि भी श्री योगींद्र को विदा कराने वहाँ पहुँचे । भूस्वानंद क्षेत्र के पालक, श्रीनग्नभैरवराज प्रभु, द्वारदेवता, ब्रह्मकमंडलु गंगा आदि सभी श्रीयोगींद्र जी को विदा कराने वहाँ उपस्थित हुए । ये बातें एक मात्र श्री सिद्धेश्वर महाराज को दिखाई दीं । ये घटनाएँ नवमी की रात्रि में घटित हुईं । उस दिन पुरी रात भर निरंतर भजन चल रहा था । सभी शिष्यगण तो उपस्थित थे ही; क्षेत्रस्थ ग्रामनिवासी भी वहाँ इकट्ठा हो गए थे । एक प्रहर रात्रि के शेष रहते भजन को रोका गया । तब श्री योगींद्र महाराज ने श्री सिद्धेश्वर जी से कहा, ''वत्स, एक अंतिम बार हम कन्हागंगा का स्नान करना चाहते हैं । क्या हमें ले चलोगे ?'' इतना कह रहे थे कि पुन: उन्होंने कहा, ''नहीं-नहीं ! अब तो हम से उठा ही नहीं जाता ।'' फिर समीप बैठे लोगों को उद्देश्य कर कहा, ''थोड़ा-सा दूर हट जाइए । हम यहीं गंगास्नान करेंगे ।'' इतना कहकर मुख से ''जय ब्रह्मकमंडलु गंगा मैया ! जय-जय श्रीमयूरेश'' का घोष किया । तभी कन्हा गंगा ने प्रत्यक्ष प्रकट हो श्री योगींद्र महाराज को

नहलाया । श्री योगींद्र महाराज ने श्री सिद्धेश्वर जी से कहा, ''यह गीली कफनी निचोडकर सुखा दो और मुझे दुसरी पहना दो ।'' श्री सिद्धेश्वर जी ने उनके कथनानुसार किया । श्री योगींद्र महाराज को दुसरे वस्त्र पहनाए । सिंदूरोद्धूलन कराया । सुयोग्य स्थान पर गणेशाक्ष धारण कराए । श्री योगींद्र महाराज ने गाणेश संध्या की। स्वयं गाणेश एकाक्षर महामंत्र जाप, कवच, हृदयादि स्तोत्रों का पठन करते हुए आवश्यक नित्य कार्य संपन्न किया । तुरंत वहाँ से उठकर मंदिर की देवप्रतिमा के पास जा बैठे । यतिश्रेष्ठ श्रीमद् गणेशयोगींद्र महाराज ने श्रीगणराज प्रभु का पूजन कर प्रार्थनापूर्वक अनुज्ञा माँगी । तभी श्रीमयूरेशमूर्ति के गले की मंदारमाला अनुज्ञा-प्रसाद के रूप में उन्हें प्राप्त हुई । श्रीमयूरेश को प्रणाम करते समय गंभीर शब्द सुनाई दिए, ''मेरे संपूर्ण अनुग्रह के लिए तुम सर्वथैव प्राप्त हुए ही हो । अब त्वरित आ जाओ ।'' इन शब्दों का श्रवण कर श्री योगींद्र महाराज बाहर के मध्य गर्भगृह में श्रीमयूरेश की मूर्ति के सम्मुख आसन लगाए बैठे । गणेश भजन लगातार चल रहा था । श्रीमयूरेश मूर्ति की ओर दृष्टि गड़ाए वे स्वस्थ हुए । उनका समूचा शरीर अत्यंत तेजोमय दिखाई देने लगा । निर्याणकाल को समीप जान श्री सिद्धेश्वर महाराज ने उनके चरणों पर मस्तक रख सद्गुरु पूजा सिद्ध की । भजन-घोष चल रहा था । माघ कृष्णा दशमी, मंगलवार उदित हुआ । श्रीयोगींद्र महाराज ने सूर्यबिंब के उदित होते ही आत्मसमर्पण करना निश्चित किया । तपःसामर्थ्य से उन्होंने अपने ब्रह्मरंध्र का भेदन किया । शरीर वहीं रह गया । स्वयंज्योति स्वरूप श्रीयोगींद्र मूर्ति मानों चलते हुए श्रीमयूरेश मूर्ति के समीप जाकर मयूरेश मूर्ति में विलीन हो गई । उस लोक विलक्षण चमत्कार को देख सभी ने श्री योगींद्र महाराज की जय-जयकार की । श्री

सिद्धेश्वर जी ने अन्य शिष्यों की सहायता से श्री योगींद्र महाराज का शरीर वहाँ से उठाकर पालकी में रखा । गंधित पुष्पादि से संपूर्णतया सजाकर उनका पूजन किया । बड़े-बड़े विद्वान उस पालकी को स्वयं अपने कंधे पर धारण कर नाना प्रकार से वेदघोष करते हुए, गणेश भजन के जयघोष-सामघोष में, विविध प्रकार के वाद्ययंत्रों का सुस्वर वादन करते हुए गंगा तट पर लाए । वहाँ सुयोग्य स्थान देख समारोह पूर्वक उस शरीर को स्थापित किया । वहाँ पुन: महापूजा एवं आरती हुई । फिर सुनिर्मित स्थान पर अनेकविध सुगंधी द्रव्यों को डाल कर विधियुक्त पद्धति से उस शरीर की स्थापना कर उसका पूजन किया गया । उस दिन से बारह दिवस पर्यंत महापूजा, महाभिषेक, भजनादि प्रकार से बहुत बड़ा उत्सव आरंभ हुआ । उनके समाराधन प्रसंग में सुमुखादि नामों की योजना आवश्यक होती है अथवा वक्रतुंडादि नामों के प्रयोग से गाणेशश्राद्ध करना अनिवार्य होता है । श्री सिद्धेश्वर महाराज ने इन बातों को यथासांग संपन्न किया । संन्यासियों के समाधिस्थान पर लिंग स्थापना अथवा पादुकास्थापना की पद्धति सर्वत्र प्रसिद्ध है किंतु यह बात गाणेशसंन्यासियों के लिए कदापि लागू नहीं होती । वहाँ श्री गणेशमूर्ति की स्थापना का नियम है । श्री सिद्धेश्वर महाराज ने समाधि स्थल पर सुंदर मंदिर का निर्माण कर गणेश मूर्ति की स्थापना की ।

श्री योगींद्र महाराज का वास्तव्य इस भूतल पर दो सौ अट्ठाईस वर्षों तक हुआ । अंतिम दीर्घ अवधि तो श्री मोरेश्वर क्षेत्र में ही व्यतीत हुई । जिन्हें उनके स्वरूप का ज्ञान हो उपदेशामृत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ उन सभी वृद्धों, युवाओं, बालकों के लिए मानों साक्षात स्वानंद महिमा का ही अनुभव हुआ । उनका

समाधिकाल है माघ कृष्णा दशमी, शक १७२७ तथा श्री मोरेश्वर (मोरगाँव) क्षेत्र में श्री ब्रह्मकमंडलु गंगा तट पर उनकी समाधि विद्यमान है । आज भी प्रतिवर्ष माघ शुक्ला पौर्णिमा से माघ कृष्णा दशमी तक श्री योगींद्र मठ की ओर से उनका पुण्यतिथि महोत्सव मनाया जाता है ।

इत्यलम्

।। श्रीमत्स्वानंदेश गणेशार्पणमस्तु ।।

।। श्रीमद्गणेशयोगींद्राचार्य कमलार्पणमस्तु ।।

।। श्री मद्गणेशार्पणमस्तु ।।

।। श्री गणराज समर्थ ।।

गणेशोपासना प्रधान ज्ञानप्रदायक गाणेश जगद्गुरुपीठ
श्री ब्रह्मभूयमहासिद्धि पीठ
अथवा
श्रीयोगींद्रमठ – (क्षेत्र मोरगाँव)

श्री योगींद्रमठ का कार्य :– नवधा भक्ति के समान यथाशास्त्र श्रीगणेशभक्ति करना । इसी प्रकार श्रीगणेशकृपा के इच्छुक भक्तों से चतुर्थी व्रतानुष्ठानपूर्वक गणेशभक्ति योगींद्रसंप्रदाय के अनुसार निग्रहपूर्वक करा लेना । श्रीगणेश उपासना विषयक उचित मार्गदर्शन करते हुए साधन, गणेशग्रंथ, पुराणांतर्गत स्तोत्र इत्यादि उपलब्ध करा देना ।

श्री मोरेश्वर क्षेत्र में पधारने वाले श्रीगणेश भक्तों का आद्य कर्तव्य :– सर्वप्रथम गाणेश गुरुपीठ के दर्शन करते हुए श्रीगणेश तीर्थस्नान तथा श्रीयोगींद्रमठ की अनुज्ञा से नित्ययात्रा–विधियुक्त श्री मोरेश्वर की सेवा करना । श्री नग्नभैरवराज प्रभु तथा श्री योगींद्र समाधि के दर्शन करते हुए मठानुशासन के अनुसार उपासना करना ।

श्रीयोगींद्रमठ की पूर्व–परंपरा :– इस गुरुपीठ को आदि कृतयुग से परंपरा प्राप्त है । कलियुग में इस पीठ के आदि आचार्य श्रीमद्गिरिजासुत योगींद्र महाराज जी ने आदि शंकराचार्य के उपदेशानुसार योगींद्र मठ की स्थापना की ।

श्रीमद् गणेश योगींद्राचार्य महाराज :– श्रीगणेश

योगींद्राचार्य महाराज जी स्वयं साक्षात् श्री मोरया तथा मुद्गलमुनि के पूर्णावतार थे । २२८ वर्षों की सुदीर्घ आयु उन्हें प्राप्त हुई थी । उन्होंने संपूर्ण गणेश - मार्ग का प्रसार-प्रचार किया । पाखंडियों का पूर्ण खंडन करते हुए सर्वत्र विश्वविजय प्राप्त की । संप्रदाय के करोड़ों अनुयायियों का उन्होंने निर्माण किया । मोरेश्वर क्षेत्र का जीर्णोद्धार किया । उनका अधिकार इतना महान था कि उनकी प्रत्यक्ष सेवा करना संभव हो इसलिए भगवान विष्णु, भगवान शिवजी, सूर्यनारायण, ब्रह्माजी तथा गुणेश ये पंचदेवता स्वयं मानव-देह धारण करते हुए उनके शिष्य बने । मोरेश्वर क्षेत्र में निवास करते हुए उन्होंने मोरया की निरंतर सेवा की ।

श्री गणेश योगींद्रमहाराज जी का
अवतार ग्रहण काल -
श्रावण शुक्ला ५, शक १४९९ (सन १५७७ ईस्वी)
समाधि-काल -
माघ कृष्णा १०, शक १७२७ (सन १८०५ ईस्वी)

श्रीमद् गणेश योगींद्रमहाराज के अनंतर लगभग पचास-पचहत्तर वर्षों का कालखंड अज्ञात ही था । तत्पश्चात श्रीमद् अंकुशधारी महाराज ने श्री योगींद्र जी के आदेश से इस गुरुपीठ का पुनरुद्धार किया । श्रीगणेश के भक्तों के लिए भिन्न-भिन्न स्तोत्रादि की रचना करते हुए गाणेशग्रंथों को अनुष्ठानपूर्वक उपलब्ध कराते हुए उन्होंने भक्तों के लिए मार्ग प्रशस्त किया । श्री मोरया को प्रसन्न कराते हुए, आजीवन मठ में रहकर तपस्या की तथा साधक को किस तरह जीवन यापन करना चाहिए इसका आदर्श उदाहरण श्रद्धालुओं के सम्मुख प्रस्तुत किया ।

श्रीमद्अंकुशधारी महाराज का
अवतार ग्रहण काल –
मार्गशीर्ष शुक्ला ६, शक १८०१ (सन १८७९ ईस्वी)
समाधि–काल –
माघ शुक्ला १५, शक १८४१ (सन १९१९ ईस्वी)

इसके पश्चात श्री अंकुशधारी महाराज जी के शिष्य श्री गाणेश वरिष्ठगाणपत श्रीमद् हेरंबराज महाराज जी ने योगींद्र मठ का कार्य निरंतर जारी रखा । अपनी आयु के १५ वें वर्ष में ही गृहत्याग करते हुए उन्होंने अपने आपको निरंतर गुरुसेवा के लिए समर्पित किया । साधकों के समक्ष आदर्श गुरुसेवा का साक्षात आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया । कठोर तपस्या से भगवान श्रीगणेश को प्रसन्न कराते हुए उन्होंने मठ में रहकर पचास वर्षों तक 'अंकुश' मासिक पत्रिका को चलाया तथा श्रीगणेश भक्ति का प्रचार–प्रसार किया ।

श्री हेरंबराज महाराज का
अवतार ग्रहण काल –
श्रावण शुक्ला ७, शक १८१४ (सन १८९२ ईस्वी)
समाधि–काल –
पौष शुक्ला १, शक १८९६ (सन १९७४ ईस्वी)

श्रीयोगींद्र मठ के व्रतानुष्ठानों में से अत्यंत महत्त्वपूर्ण पर्व
श्रीमयूरेश जन्म – भाद्रपद शुक्ला १ से ४
श्रीयोगींद्र पुण्यतिथि उत्सव–माघ शुक्ला १५ से माघ कृष्णा १०

– श्रीगा. बालविनायक महाराज लालसरे
मोरगाँव (जि. पुणे)